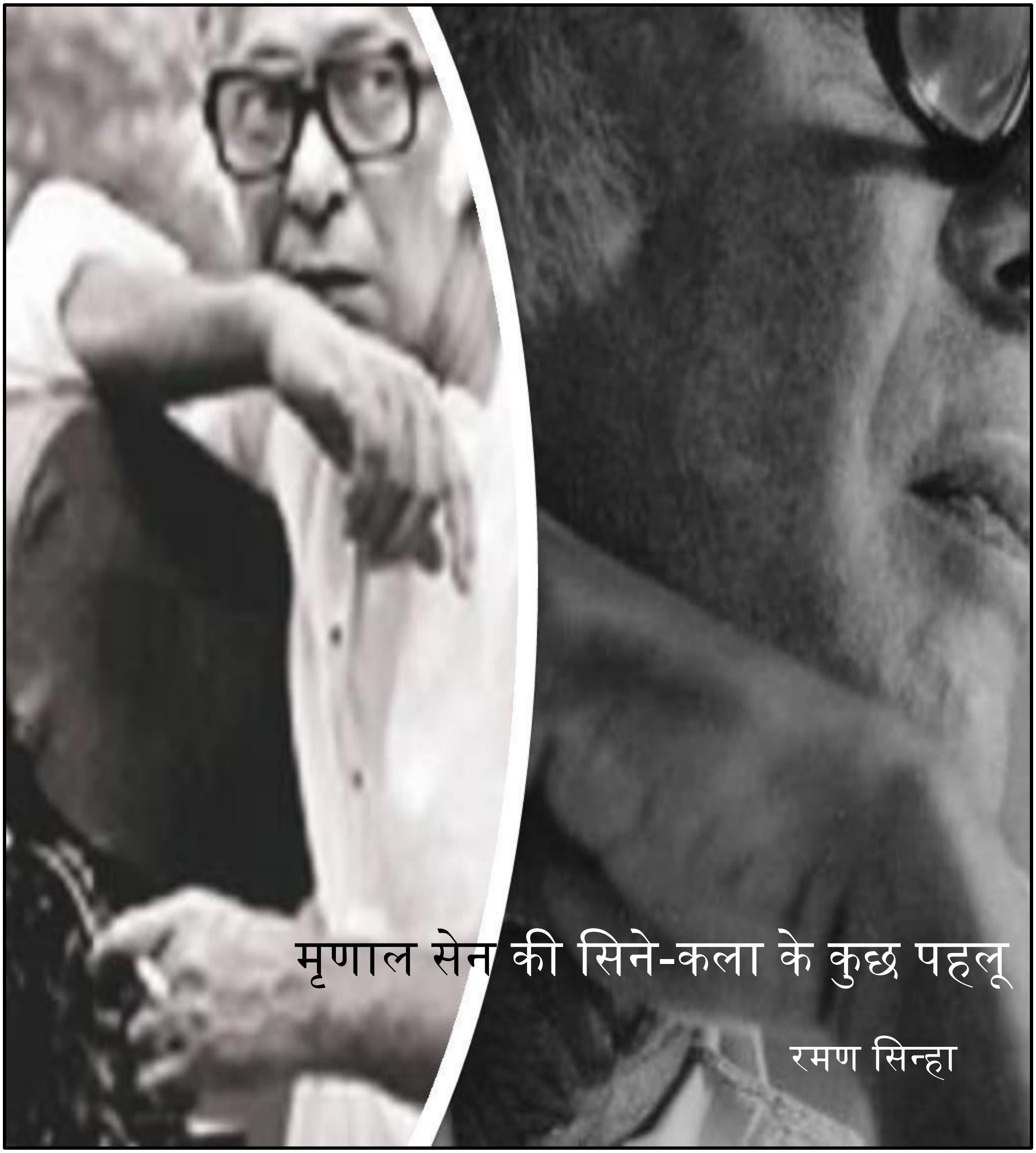

मृणाल सेन की सिने-कला के कुछ पहलू
रमण सिन्हा

"मैं अपने ही समय से हमेशा पीछा किया जाता हूँ। मैं इससे बच नहीं सकता।"

मृणाल सेन*[1]

एक

मृणाल सेन (१९२३-२०१९) के सिनेमा की दो धुरियाँ हैं -----एक धुरी पर मनुष्य की बाहरी दुनिया है,जहां सामाजिक-राजनैतिक-आर्थिक सन्दर्भ में मनुष्य की नीति और नियति की पड़ताल की गयी है,जैसे *इन्टरव्यू(१९७०),कलकट्टा ७१ (७२),पदातिक(१९७३)*,मृगया(१९७६)*ओका ओरी कथा (१९७७), परशुराम (१९७८)* जैसी बहिर्मुखी फिल्में;दूसरी धुरी पर ऐसी फिल्में हैं जिसके केंद्र में व्यक्ति है,उसका अंतर्मन है,जहां अंतर-वाह्य के अंतर्द्वंद्व के जाले में उलझा हुआ उसका अवचेतन संसार झांकता है: *एक दिन प्रतिदिन (१९७९), खंडहर(१९८३),जेनेसिस(१९८६),एक दिन अचानक (१९८९),अंतरीन (१९९३),* ऐसी ही अंतर्मुखी फ़िल्में हैं। मृणाल सेन की अन्य फ़िल्में इन्हीं दो ध्रुवान्तों के बीच कहीं न कहीं अवस्थित हैं।

शिल्प या फार्म के स्तर पर मृणाल सेन की फिल्मों का एक सिरा एक रेखीय प्रवाह को कायम रखने वाला, यथार्थ का भ्रम खड़ा करने वाले यथार्थवादी शिल्प से जुड़ता है,जैसे *रातभोर(१९५६),बाईशे श्रावण (१९६०),पुनश्च (१९६१), आकाश कुसुम (१९६५) ,इच्छापूरण(१९७०), आमार भुबन(२००२)* ; दूसरे छोर पर *भुवन सोम(१९६९), इन्टरव्यू(१९७०),कलकट्टा ७१(१९७२),कोरस (१९७४) ,आकालेर संधाने(१९८०)* जैसी आत्म-सजग फ़िल्में हैं जहां आख्यान के तथाकथित सहज प्रवाह को चेतन रूप से खंडित करने का प्रयास किया गया है,दर्शकों को जो दिखाया जा रहा है,वह ऐसे दिखाया जा रहा है कि उसके साथ बहने के बजाय आप उसके प्रति ब्रेख्तियन आग्रह के साथ एक प्रकार के आलोचनात्मक रूख अपना सकें; शेष फ़िल्में इन दोनों प्रविधियों को भिन्न भिन्न अनुपात में अपनाती हैं।

**मृणाल सेन का जन्म १९२३ को फरीदपुर पूर्वी बंगाल (अब बांगलादेश) में राष्ट्रवादी वकील पिता के घर हुआ।सत्रह वर्ष की अवस्था में उच्च शिक्षा के लिए कलकत्ता आए।स्काटिश चर्च कालेज से विज्ञान की शिक्षा प्राप्त की।इन्हीं दिनों मार्क्सवाद और इप्टा से परिचय हुआ।उन दिनों उन्हें फिल्मों से कोई लगाव नहीं था लेकिन भौतिक विज्ञान के विद्यार्थी होने के कारण फिल्म के साउंड रिकार्डिंग में दिलचस्पी पैदा हुई और वे कलकत्ता के आँरोरा स्टूडियो में दाखिल हो गए।इप्टा और यहाँ के अनुभवों के बल पर अपनी पहली फिल्म 'रात भोर' का निर्माण किया जो बुरी तरह असफल ही नहीं हुआ बल्कि उनके लिए इस हद तक हतोत्साहित करने वाला साबित हुआ कि आगे कभी भी फिल्म न बनाने की उन्होंने कसम खाई। दवा-कंपनी में 'मेडिकल रिप्रेसेन्टेटिव' बन गए ---- उत्तर प्रदेश के बनारस,कानपुर ,झांसी में दवाइयों का विज्ञापन करने लगे लेकिन एक दिन आईने के सामने उनके नग्न हमशक्ल ने कहा कि 'यह तुम्हारी दुनिया नहीं है,लौट जावो ' और वे लौट गए---'नील आकाशेर नीचे' बनाई और फिर उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा।फिल्म के लिए लगभग सभी प्रतिष्ठित राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय पुरूस्कार उन्हें मिले .राज्य-सभा की सदस्यता(१९९७-२००३) भी मिली ,पद्म-भूषन (१९८१) भी मिला और भारतीय सिनेमा का सर्वश्रेष्ठ पुरूस्कार दादा साहेब फाल्के (२००३)भी।पंचानवे वर्ष की अवस्था में ३० दिसंबर २०१८ को कलकत्ता में देहावसान।*

[1]***"I am always chased by my own time.I can not escape it."* Motage,Seagull Books, London, New York, Calcutta, First Published, 2002. p 126**

दो

मृणाल सेन की पहली फिल्म *रातभोर* (१९५६) को देखकर ऐसा नहीं लगता कि बंगाल में ऋत्विक घटक (१९२५-७६) की फिल्म *नागरिक* (१९५२) और सत्यजित राय (१९२१-९२)की *पाथेर पांचाली* (१९५५)इसके पहले बन चुकी हो ।स्वयं निर्देशक इस फिल्म से बुरी तरह निराश हुए ।[2]उनकी दूसरी फिल्म *नील आकाशेर नीचे* (१९५८) जरूर कुछ उल्लेखनीय कही जा सकती है। महादेवी वर्मा की *स्मृति की रेखाएँ*(१९४३) की *चीनी फेरीवाला* पर आधारित यह फिल्म,कहा जाता है कि नेहरू को बहुत पसंद थी; बावजूद इसके स्वतन्त्र भारत की यह पहली ऐसी फिल्म थी,जिसे सरकारी प्रतिबंध झेलना पड़ा।प्रसिद्ध गायक हेमंत कुमार द्वारा निर्मित इस फिल्म में स्वदेशी आन्दोलन की पृष्ठभूमि में एक भारतीय स्त्री और एक चीनी फेरीवाले के बीच पनपने वाले स्नेह को दर्शाया गया है।चीनी फेरीवाले के जीवन-संघर्ष को ----उसके अतीत को, उसके दु;स्वप्न को , चीन-जापान युद्ध के दौर में उसके देश-वापसी को रैखिक ढंग से पारम्परिक यथार्थवादी मुहावरे में पकड़ा गया है। महादेवी वर्मा की रचना में फेरीवाले के बचपन की त्रासदी में विमाता द्वारा बड़ी बहन को देह-व्यापार में धकेले जाने का बड़ा मार्मिक चित्रण है[3] जिसे फिल्म में,पता नहीं क्यों जमींदार की करतूत बना दिया गया है ---क्या यह इप्टा(IPTA) का रिक्थ है?[4]

---

[2] **"I hate to talk about Raat Bhor(All night long)because it was a complete disaster. I not only felt terrible, I felt humiliated. I thought filmmaking was not my cup of tea …" Quoted in Mrinal Sen The Survivor, Shoma A.Chaterjee,Rupa & Co.,2003,p.27**

[3] *"एक रात उसने बिछौने पर लेटकर बहिन की प्रतीक्षा करते-करते आधी आँख खोली और विमाता को कुशल बाजीगर की तरह,मैली-कुचैली बहिन का काया-पलट करते देखा ।उसके सूखे ओठों पर विमाता को मोटी उंगली ने दौड़-दौड़ कर लाली फेरी,उसके फीके गालों पर चौड़ी हथेली ने घूम-घूम कर सफ़ेद गुलाबी रंग भरा, उसके रूखे बालों को कठोर हाथो ने घेर घेर कर संवारा और तब नए रंगीन वस्त्रों में सजी हुई उस मूर्ति को एक प्रकार से ठेलती हुई विमाता रात के अन्धकार में बाहर अन्तर्हित हो गयी ।"* स्मृति की रेखाएं, महादेवी वर्मा,लोकभारती प्रकाशन,इलाहाबाद,२००८,पृष्ठ २३

[4] अपने एक साक्षात्कार में मृणाल सेन ने स्वीकार किया है ***"The cultural branch of the Communist Party in India was very strong during the war. Afterward, we had an organization called the Indian People's Theatre Association (IPTA), a very large, all-India organization that used to produce brilliant plays. They changed the entire face of drama in the country. We all belonged to that group but before independence, in 1947, it was easy for our people to take a side, because we had one common, very clear-cut enemy, but after 1947 it became very complicated. The cadres of the IPTA were composed of middle-class people and their interests started clashing. We thought we might be able to bring that sort of IPTA atmosphere into the film industry but filmmaking is a very expensive proposition, and it was very difficult for us to develop such an aggressive institution. "*** **Understanding My Times: An Interview with Mrinal Sen (Web Exclusive)by Gary Crowdus,Cineaste, Vol. XLIV, No. 1**

तीन

मृणाल सेन के लिए वे *पैराडाइज कैफे* के दिन थे : १९४९ के आसपास कलकत्ते में रंगमंच और फिल्मों में दिलचस्पी रखने वालों की एक छोटी-सी टोली बन गयी थी, जिसमें मृणाल सेन के अतिरिक्त ऋत्विक घटक, तापस सेन,हृषिकेश मुखर्जी,बंसी चन्द्र गुप्त,नृपेन गंगोपाध्याय,बिजन भट्टाचार्या,काली बंधोपाध्याय जैसे लोग शामिल थे। पूरी टोली बिना नागा,हर दिन, सुबह आठ बजे ही *पैराडाइज कैफे* में जुट जाती थी और फिर दिन-भर लगातार, बहस-मुबाहिसों का दौर चलता था। एक साक्षात्कार में मृणाल सेन ने कहा है कि पहले वे यह कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि *गांधी जिन्ना फिर मिले* जैसे विषय पर भी आधे घन्टे का नृत्य-नाटक रचा जा सकता है। १९४०-४१ से ही वे इप्टा के सौंदर्यशास्त्र से, उनके नाटक और उनकी नृत्य-शैली से गहरे प्रभावित थे ।[5] उन्होंने एक अन्य स्थल पर स्वीकार किया है कि हमारी फिल्मों को हमारे रंगमंच से बहुत कुछ सीखने की जरूरत है।[6] इप्टा के बैनर तले विजन भट्टाचार्य की नाट्य-कृति *आग,नवान्न,जबानबंदी(अंतिम अभिलाषा)(१९४४)* और ख्वाजा अहमद अब्बास निर्देशित फिल्म *धरती के लाल(१९४६)* की चर्चाएँ हवाओं में थीं।बंगाल के अकाल की पृष्ठभूमि में ये रचनाएं किसी ऐतिहासिक काल खंड की दस्तावेज भर नहीं थीं बल्कि कला कैसे जनजागरण का माध्यम बन सकती है,इसका एक बेहतर दृष्टांत भी प्रस्तुत करती है।बिजन भट्टाचार्य ने लिखा है, "उस प्रदेशव्यापी विघटन के भयंकर दौर में एक तरफ जहां लाचार भूखे इंसान रास्ते –रास्ते गली-गली मर रहे थे,वहीं दूसरी ओर स्वाधीन भारत की जीवन-यात्रा भी चालू थी---सुलगते हुए 'अगस्त आन्दोलन' के दौर का अमर संघर्ष।जातीय जीवन के इस अँधेरे उजाले संधि-क्षण में प्रगतिशील लेखक और शिल्पी संघ ने एक सांस्कृतिक आन्दोलन शुरू किया ।पठन-पाठन और राष्ट्रीय संगीत द्वारा सांस्कृतिक अनुष्ठान के अलावा नाटक के माध्यम से देश की हालत और पुकार जनसाधारण तक पहुंचाने की उपयोगिता के उद्देश्य ने भी इस सांस्कृतिक संगठन के कार्यकर्ताओं को विशेष रूप से जागृत किया । कहने की आवश्यकता नहीं कि मैंने भी इस संघ के एक सक्रिय सदस्य के नाते सबसे पहले 'आग' फिर 'जबानबंदी'('अंतिम

---

[5] Montage,ibid,p.33

[6] The Expanded Theatre, in View on Cinema, Mrinal Sen, Ishan Publication, Calcutta, First edition, 1977,p.70

अभिलाषा')और फिर 'नवान्न'('नयी फसल')नाटक की रचना की।"[7] ऋत्विक घटक इप्टा के महत्वपूर्ण नाटकों----शम्भु मित्र के *विसर्जन*,बिजन भट्टाचार्य के *नवान्न* में अभिनय कर रहे थे और आगे चलकर वे ५१-५२ में इप्टा के केन्द्रीय कलकत्ता शाखा के प्रभारी भी बने। उन्होंने जो पांच नाटक लिखे[8] उनमें तीन ----ज्वाला(१९५०),दलील (१९५२)और शंका (५३ -५४)इप्टा के बैनर तले खेले गए। ऋत्विक घटक की मृत्यु पर उन दिनों को याद करते हुए मृणाल सेन ने लिखा है कि "हमलोगों की रुचियों में अपार वैविध्य होने के बावजूद हम जिस विषय पर बार-बार लौटते थे, वह था सिनेमा। सिनेमा,सिनेमा और सशस्त्र क्रान्ति।यह वह समय था जब हमलोगों ने सीखा कि सिनेमा की जो अपनी अवधारणा है,जो क्रान्ति की अवधारणा से अटूट रूप से सम्बद्ध है, कैसे उसके साथ जिया जाय। यह वह समय भी था, जब कम्युनिस्ट पार्टी पर अपनी दृढ आस्था व्यक्त करने के बाद, अपने देश की नीरस फिल्मों के प्रति हम एक प्रकार की तीव्र वितृष्णा के भाव से भर गए।"[9]

चार

फिल्म के यथार्थवादी फ़ार्म से उलझने या उसे छोड़ने या तोड़ने की शुरूआत मृणाल सेन के यहाँ *आकाश कुसुम* से होती है,इसके पहले की सभी छः फ़िल्में पारंपरिक यथार्थवादी शिल्प में निर्मित हुई हैं। *आकाश कुसुम* में भी कथानक(प्लाट) के पारंपरिक ढाँचे को तोड़ा नहीं गया है ,बस कुछ स्टिल फ़ोटोग्राफ्स ,*फ्रीज-फ्रेम* , के सहारे उसे कुछ लचीला बनाने की जरूर कोशिश की गयी है,जिसे सत्यजित राय *फैशनेबुल आख्यान-युक्ति* के सिवा कुछ नहीं मानते।[10]यह सच है कि फ्रांकुआ त्रुफो (१९३२-८४)के *फोर हंड्रेड ब्लोज(१९५९)* के बाद संसार भर में फ्रीज-फ्रेम फैशन की तरह बरता जाने लगा था और आकाश कुसुम में इसके अत्यधिक प्रयोग को स्वयं

---

[7] बिजन भट्टाचार्य के दो नाटक,अनुवाद:नेमिचंद्र जैन,भारतीय ज्ञानपीठ,दिल्ली,२०१३,पृष्ठ १०

[8] **Ritwik Ghatak: Five Plays, Niyogi Books Private Limited, Delhi, First edition, 2017**

[9] **Montage,ibid,p.113**

[10] ***"If Akash Kusum has any contemporaneity, it's on the surface---in its modish narrative devices and in some lively details of city life."Satyajit Ray, in Film Polemics,(ed.)Sakti Basu,Shuvendu Dasgupta,Cine club of Calcutta, First Edition,1992,p.38***

मृणाल सेन बाद में बचकाना और अवांछित मानने लगे थे[11] लेकिन फिल्म में इसके माध्यम से यथार्थवादी शिल्प के आग्रह को तोड़ने और अगर गिल्स देल्यूज(१९२५-९५) के पदबंध का प्रयोग करें तो *गति-समय के खंड (ब्लाक्स आफ मूवमेंट-टाइम)*[12] को अपने तरीके से गढ़ने का प्रयास जरूर दिखाई देता है।लेकिन फिल्म के ढाँचे में मूलभूत बदलाव लाने की असली शुरूआत *भुवन शोम* से होती दिखाई देती है ।



[11] ***"Then, I saw ...400 blows. And in my infantile enthusiasm, I brought in a truckload of freezes into my film----something I should not have done."*** **Mrinal Sen Over the years, An Interview With Samik Bandopadhyay,Seagull Books,Calcutta,2003,p.49**

[12] ***"Someone who makes a block of movement / duration might be doing cinema. This has nothing to do with invoking a story or rejecting it Cinema tells stories with blocks of movement / duration."*** **What is the Creative Act? Gilles Deleuze, In Two Regimes of Madness, Texts and Interviews 1975-1995 Gilles Deleuze (1925-1995), edited by David Lapoujade, translated by Ames Hodges and Mike Taormina pp. 312-324**

भारतीय फिल्मों के इतिहास में *भुवन शोम* कई दृष्टियों से एक प्रस्थान माना जा सकता है। सबसे पहले इस फिल्म में कथानक के निर्बाध आधिपत्य को ध्वस्त कर विशिष्ट प्रवृति को इंगित करते पलों की श्रृंखला के माध्यम से फिल्म रचने पर जोर दिया गया था।[13] फीचर फिल्मों में एनिमेशन, मुखौटों और ध्वनि का भी इतना सार्थक प्रयोग हो सकता है,यह इसी फिल्म से पता चला।फिल्म का नायक भुवन शोम पक्षी-विज्ञानी बनना चाहता है,अत:एनिमेटेड पक्षियों का एक दल उसके सर के ऊपर चक्कर काटते हुए दिखाया गया है ; वह रेलवे में काम करता है अतः जब वह हँसता है तब उसकी हँसी में स्टीम इंजन से तेज-तेज भाप निकलने की आवाज सुनाई पड़ती है। मृणाल सेन ने कहीं लिखा है कि वे इस फिल्म में अपने प्रिय चार्ली चैपलिन के *अनुप्राणित अनाप-शनाप* (इंस्पायर्ड नानसेंस) को आजमाना चाहते थे।[14] भारतीय फिल्मों के कथ्य में विनोद और वाग्वैदग्ध्य की उपस्थिति तो हमेशा से रही थी लेकिन फिल्म की शैली ही विनोद और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण हो जाय,यह एक बिलकुल नई बात थी। यह भारत की पहली फिल्म थी जो सरकार की वित्तीय सहायता से मात्र डेढ़ लाख रूपये में बनाई गयी थी,जिसके सभी कलाकार और अधिकाँश तकनीकी विशेषज्ञ उस समय हिन्दी फिल्म-उद्योग के लिए बिलकुल नए थे।इस फिल्म की सफलता ने व्यावसायिक फिल्मों के दैत्याकार संस्कृति- उद्योग के सामने एक विकल्प खड़ा करने का ऐतिहासिक काम किया-----अब यह संभव माना जाने लगा कि सरकारी सहायता से कम पैसों में भी सार्थक फ़िल्में बनाई जा सकती हैं।यह भारत में समानांतर सिनेमा की शुरूआत थी ।

यह बात कुछ अजीब लग सकती है लेकिन सच है कि मृणाल सेन की जो फ़िल्में तथाकथित 'सामाजिक यथार्थ' को लेकर चलती हैं, जो प्रतिबद्ध राजनैतिक फ़िल्में हैं,वे ही सर्वाधिक प्रयोगशील भी हैं। इसकी शुरूआत *इंटरव्यू* से हुई,जब फिल्म के नायक रंजित मल्लिक दर्शकों की आँखों में सीधे ताकते हुए कहते हैं :"जिसे अभिनेता कहा जाता है न , वह मैं नहीं हूँ ,मैं रंजित मल्लिक हूँ।मैं कोई स्टार नहीं हूँ,एक

---

[13] **अपने एक साक्षात्कार में मृणाल सेन पहले भी कथानक की संरचना की अनदेखी करने की बात कह चुके हैं और उनका यह भी मानना था कि इस प्रकार की कथानकहीनता की उपस्थिति हिन्दी साहित्य की कुछ रचनाओं में पहले से ही मौजूद है ।यहाँ मृणाल सेन ने यह खुलासा नहीं किया है कि हिन्दी साहित्य की वे कौन रचनाएं हैं लेकिन मेरा अनुमान है वे निर्मल वर्मा की रचनाओं की बात कर रहे थे ,देखें, Over the Years,p.42** एक दूसरे स्थल पर भी उन्होंने स्वीकार किया है कि **"with staccato movements or cuts, I designed the film in terms of attitude, in terms of situations, in terms of shot divisions and in terms of editing."Montage,Ibid,p.125**

[14] **Over the Years,ibid,p.59**

साप्ताहिक पत्रिका में काम करता हूँ जहां छोटा-मोटा सभी काम मुझे ही करना पड़ता है -----प्रूफ देखने से लेकर विज्ञापन के लिए जुगाड़ करने तक ... भीषणता और घटनाओं से भरपूर है मोशाय मेरा जीवन ...मृणाल सेन को यह सब बहुत आकर्षक लगा...अरे मृणाल सेन, वही भद्रलोक जो फिल्म-विल्म बनाते हैं...कहने लगे,ठीक है,सुबह से शाम तक मैं इसे कैमरे में फिल्माऊँगा।अब आपलोग बताइए,इसका कुछ अर्थ है?...मुझे कुछ भिन्न नहीं करना है,जो मैं दिन-भर करता हूँ,बस वही...मैंने उन्हें आज के इंटरव्यू के बारे में बताया तो उन्होंने कहा, "फाइन,यह तो बेहद नाटकीय रहेगा ..."



कलकत्ता की चलती हुई भीड़ भरी ट्राम में रंजित मल्लिक सीट न मिलने के कारण खड़े हैं और और मृणाल सेन के सिनेमोग्राफर के.के.महाजन इसे शूट कर रहे हैं...अगले दृश्य में के.के.महाजन बस से उतरते दिखाए गए हैं जिसे इंगित कर अपने सहयात्रियों को नायक कहता है, " देखा आपने,देखा कैसे वे लोग मेरा पीछा कर रहे

हैं ।अच्छा वह चला गया।इसमें जो आप देख रहे हैं, वह सब सच ही नहीं है।मैं सच हूँ,मैं जो यह ट्रेवल कर रहा हूँ वह सच है ,मेरी नौकरी भी सच है लेकिन इसमें मेरी माँ को जो आपलोगों ने देखा न, वह मेरी सचमुच की माँ नहीं है...वह एक अभिनेत्री है...

और यहीं वह अभिनेत्री,करूणा बनर्जी पाथेर पांचाली के उस विख्यात दृश्य में अवतरित होती है,जहाँ बेटी दुर्गा की मृत्यु से अनजान पति हरिहर बाहर से लौटते ही उसे वह साडी दिखाता है,जो वह दुर्गा के लिए लाया है और जिसे पकड़कर वह फफक कर रो पड़ती है... कुछ देर तक यह दृश्य ठहरता है फिर चलती ट्राम में रंजित मल्लिक का संवाद जारी रहता है : " यह मेरी माँ की भूमिका निभा रही है लेकिन मेरी अपनी माँ भी सर्बोजया की जगह होती तो ऐसा ही करती ।"

नमस्कार कह कर जब रंजित मल्लिक बस से उतर जाते हैं तब बस का एक सहयात्री कहता है,अरे यह तो मेरी कहानी है,फिर दर्शकों की ओर इंगित करते हुए कहता है यह तो आपकी कहानी है ।

ब्रेख्त के *विसंबंध प्रभाव* (alienation effect) में चरित्र और अभिनेता के बीच अलगाव की बात की जाती है,जबकि यहाँ तो अभिनेता ही चरित्र बन गया है।[15]ब्रेख्त ने लिखा है, "विसंबंध प्रभाव सुनिश्चित करने के लिए पहली शर्त यह है कि अभिनेता को जो दिखलाना है उसे वह प्रदर्शन की एक निश्चित कार्यावली में दिखाए ।निश्चिय ही यह नितांत आवश्यक है कि इस पूर्वधारणा को तोड़ा जाय कि रंगमंच और दर्शक के बीच एक चौथी दीवार होती है और परिणामत:यह भ्रम कि रंगमंच पर जो घटित हो रहा है,वह यथार्थ में घटित हो रहा है और जिसका कोई

---

15. **" Ranjit's statement before the camera is the first example of Brechtian alienation in Indian cinema. But Sen has always insisted that he has never been influenced by Brecht, the only modern European dramatist who cast a deep impression on him happened to be Peter Weiss. What stands out in Interview is Sen's attempt to contrast reality and surrealism", *The Maverick Maestro: Mrinal Sen*, Deepankar Mukhopadhyay, New Delhi, Indus, 1995. P-85**

दर्शक नहीं है। तभी सिद्धान्ततः अभिनेता के लिए दर्शक को सीधे संबोधित करना संभव होगा।"[16]

फिल्म में रंजित मल्लिक इंटरव्यू में पहनने के लिए जिस सूट की तलाश कर रहे हैं,क्या दर्शक उस तलाश का महज एक मूक दर्शक बना रहता है या अंत में अपनी उत्तर-औपनिवेशिक नियति से हताश होकर जब वे दुकान में सजे सूटधारी पुतले पर तीव्र क्रोध से पत्थर मारते हैं तब कांच के टूटने के साथ- साथ दर्शक और प्रदर्शक(परफोर्मर) का पारंपरिक रिश्ता भी टूटता है?दर्शक सोचता है कि फिल्म के आरंभ में औपनिवेशिक शासकों की मूर्तियों को जो बड़े पैमाने पर अपदस्थ होता दिखाया गया था,क्या वह इस कार्यवाही का पूर्वरंग था ?क्या यह फिल्म ठोस सकर्मकता के बजाय सांकेतिक कार्यवाही के खोखलेपन को रेखांकित करना चाहती है?क्या उत्तर-औपनिवेशिक समय में नव-उपनिवेशवाद के प्रतिरोध का स्वरूप यही होगा?दर्शकों को उकसाने का काम अगर फ़िल्मकार का उद्देश्य है,जैसा कि मृणाल सेन मानते रहे हैं[17] तब यह फिल्म अपने उद्देश्य में सफल कही जा सकती है।

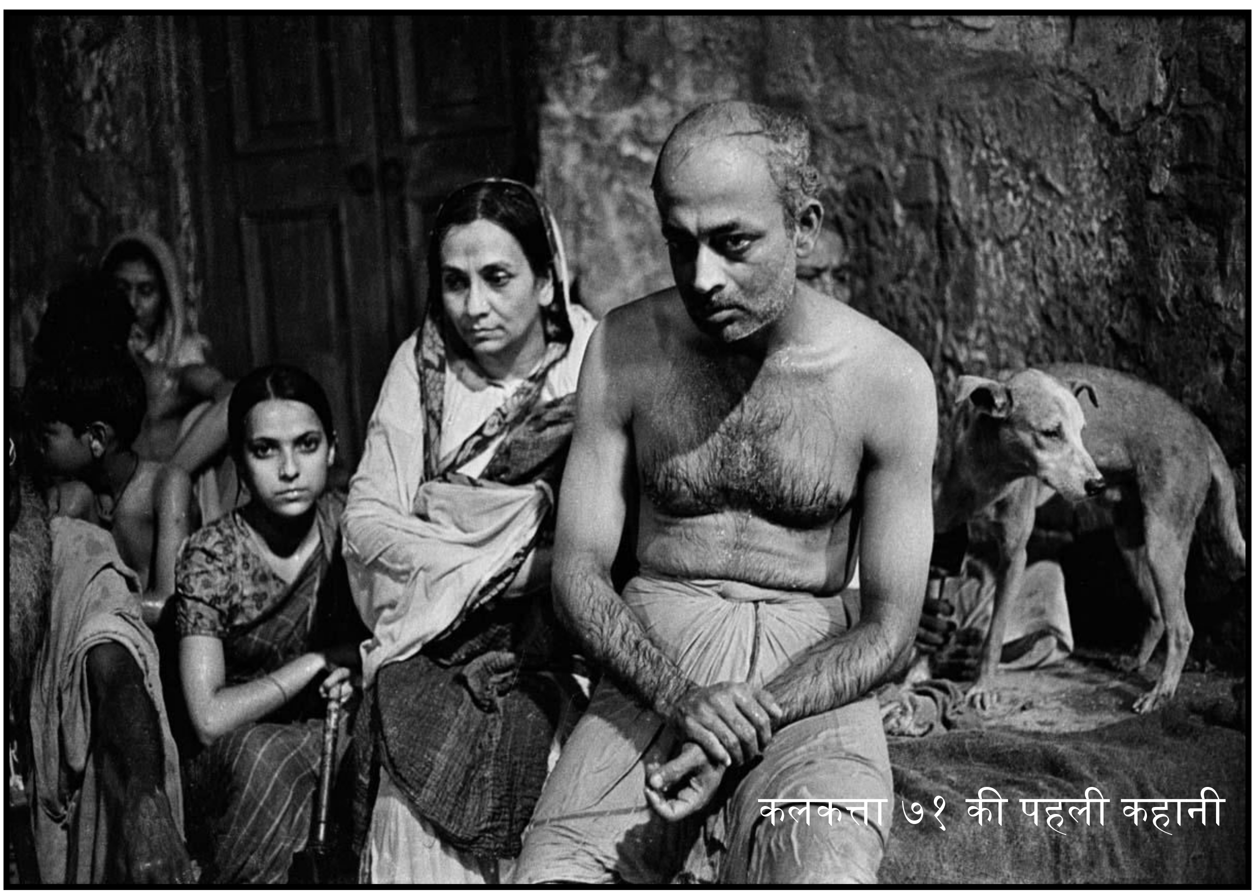
पाँच

कलकत्ता-त्रयी की अगली फिल्म *कलकत्ता ७१* में चार कहानियों का कोलाज बनाया गया है।कोलाज का 'देश' कलकत्ता है लेकिन 'काल'अलग-अलग है ---- १९३३,१९४३,१९५३ और १९७१।फिल्म के आरम्भ होते ही परदे पर कुछ पंक्तियाँ उभरती हैं,साथ ही पीछे से आवाज: *"मैं बीस साल का हूँ।हजार साल से मैं बीस का ही हूँ। हजार साल से मैं सड़ांध और मृत्यु से लगातार गुजर रहा हूँ।हजार साल से मैं हताशा में साँस ले रहा हूँ। हजार साल से मैं देख रहा हूँ इतिहास ------ कभी न ख़त्म होने वाली दरिद्रता का इतिहास,वंचना का इतिहास,शोषण का इतिहास ।"*

---

[16] "The first condition for the achievement of the A-effect is that the actor must invest what he has to show with a definite gest of showing. It is of course necessary to drop the assumption that there is a fourth wall cutting the audience off from the stage and the consequent illusion that the stage action is taking place in reality and without an audience. That being so, it is possible for the actor in principle to address the audience direct." Brecht on Theatre,edited and translated by John Willett,Radha krishna Prakashan,Delhi,First Indian Reprint,1979,p.136
[17] Montage,ibid,p.143

फिर इसके बाद तेजी से कई दृश्यों का सन्निधान(जक्स्टापॅजिशन)उभरता है------ हावड़ा पुल,औपनिवेशिक इमारतें,व्यस्त सड़कें,भीड़भाड़,भागती हुई गाड़ियां,ट्राम,वाहनों का शोर-गुल,घुड़दौड़ ,टाइप करती मशीनें ,सितार वायलिन की जुगलबंदी और तेज संगीत पर थिरकते युवक-युवतियां,दुर्गा-प्रतिमा की शोभा-यात्रा, पत्थरबाजी,पुलिस फायरिंग, भगदड़,बहुमंजली इमारत,फुटपाथ पर लुटे-पिटे लोगों के स्थिर चित्र,शो-विन्डो से झांकता 'इंटरव्यू' का पुतला----सन ७१ का कलकत्ता यही है। फिल्म का दृश्य बदलता है और सुहासिनी मुले का क्लोज-अप उभरता है ...रेडियो से खबर आ रही है ...क्लोज-अप में चेहरा चिंतित हुआ जा रहा है ...*आज सुबह कलकत्ता मैदान के उत्तर-पश्चिम प्रांत में एक अज्ञात अपरिचित व्यक्ति का शव मिला है,जिसकी अनुमानित आयु बीस साल है,शरीर पर चोट के कई निशान हैं ।अगर कोई इस मृत व्यक्ति को जानता हो, तो कृपया कलकत्ता पुलिस को इसकी सूचना दें ।* परदे पर फिर पंक्तियाँ उभरती हैं: *हजार साल से मैं देख रहा हूँ इतिहास ------ कभी न ख़त्म होने वाली दरिद्रता का इतिहास,वंचना का इतिहास,शोषण का इतिहास ।"* और फिर इस मूलाधार के चारो ओर ही मानो दृष्टान्त के तौर पर चार कहानियों की श्रृंखला का आरम्भ होता है।



कलकत्ता ७१ की पहली कहानी

पहली कहानी मणिक बंदोपाध्याय(१९०८-१९५६) की सन्१९३३में प्रकाशित *आत्महत्या का अधिकार* है। मानसून की तेज बारिश से एक जर्जर चूते हुए घर में पानी से बचने की कोशिश में नाकाम होता ग्रामीण निम्न-वर्गीय परिवार का एक मार्मिक चित्र।दूसरी कहानी आरम्भ होने के पहले *बाईसे श्रावण* (१९६०) के एक दृश्य को उद्धृत किया गया है,संभवत:बंगाल के अकाल से एक प्रकार का साहचर्य कायम करने के लिए । प्रबोध कुमार सान्याल (१९०५-१९८३) की *अंगार* (१९४३) कहानी में बंगाल के अकाल के दिनों का एक शहरी मध्य-वर्गीय परिवार का चित्रण है जहां घर की संभ्रांत स्त्रियाँ वैश्यावृत्ति अपनाने को बाध्य होती हैं। तीसरी कहानी समरेश वसु (१९२४-१९८८) के *स्मगलर* (१९२४-१९८८)में गौरांग नामक पंद्रह वर्षीय लड़के की कहानी कही



गयी है जो अपने घर का मुखिया है और घर चलाने के लिए जिसे हर दिन गाँव से प्रतिबंधित एक बोरा चावल लेकर शहर में बेचने(तस्करी?) जाना होता है। अन्तिम

कहानी अजितेश बंदोपाध्याय(१९३३-१९८३) की है जिसमें उच्च वर्गीय अति सुविधासंपन्न समाज की एक झांकी प्रस्तुत की गयी है -----काकटेल पार्टी में तेज संगीत के बीच बंगाल के अकाल पर चर्चा चल रही है कि कैसे पचास लाख से अधिक लोग भूख से मर गए, मेज़बान कह रहा है कि व्यक्ति को हर पल प्रतिक्रिया के लिए तत्पर रहना चाहिए इसलिए बंगाल के अकाल पर यह पेंटिंग उसने बेड-रूम या ड्राइंग -रूम में न लगाकर डाइनिंग टेबुल के सामने लगवाई है,यह मन को उद्वेलित करती है और अंतरात्मा को जगाने का काम करती है।


कलकत्ता ७१ की तीसरी कहानी

पार्टी ज्यों ज्यों शबाब पर पहुँचती है लोगों का खोखलापन उजागर होने लगता है और अंत होते ही परदे पर अन्धेरा उतर आता है जिसकी पृष्ठभूमि में पहले आवाज फिर एक चेहरा उभरता है,जो दर्शकों को सीधे संबोधित करता हुआ कहता है कि आज बड़े भोर,मैदान के उत्तर पश्चिमी छोर पर, जब आसपास कोई नहीं था,मुझे गोली मार दी गयी...क्या मेरी भयंकर मृत्यु से आपको कोई यंत्रणा नहीं

हुई?...जानते हैं मेरा अपराध क्या है? मैंने सब देखा है --- अत्याचार,अभिचार,अन्याय ,युग युग से... हजार वर्ष से ...हमारी आयु बीस साल नहीं है...मैंने सब देखा है,मैं सब देख रहा हूँ ...



मन को उद्वेलित और अंतरात्मा को जगाने वाली चित्र-रचना !

यहीं शिवप्रसन्न बनर्जी की एक चित्र-रचना पर कैमरे की निगाह पड़ती है और फिर बड़ी तसल्ली से उसका अवलोकन करते हुए दिखाया गया है ...चित्र से झांकती हुई आँखें मानो कह रही हो : *मैंने सब देखा है,मैं सब देख रहा हूँ ...*

यही उद्घोषक पहली और दूसरी कहानी के कुछ अंशों के साथ फिर आता है अपनी अंतिम यात्रा का वृत्तांत लिए ----- शैलीकृत पुतलों की शक्ल में पुलिस से बचता भागता सड़कों पर लाशों के बीच गुजरता हुआ एक लांग शाट और फिर गोली खा

कर जमीन पर चित्त ...पक्षियों की चीख और फिर पर फड़फड़ाकर तेजी से उड़ने की आवाज...परदे पर अन्धकार और पृष्ठभूमि में आकाशवाणी की बजती हुई हस्ताक्षर धुन (*सिग्नेचर ट्यून)* ... यह फिल्म का अंत है, पर परदे पर *समाप्त* के बजाय *सकाल* (सुबह) शब्द उदित होता है...



शिवप्रसन्न की चित्र-रचना :



मैंने सब देखा है,मैं सब देख रहा हूँ ...

भारतीय फिल्म इतिहास में, ऐसी गझिन बुनावट वाली राजनैतिक फिल्म, बहुत कम बनी हैं। दरिद्रता और वंचना के इतिहास को कहानी दर कहानी कुछ यूं प्रस्तुत किया गया है कि फिल्म अकर्मक से सकर्मक प्रतिरोध की यात्रा का एक जीवंत दृष्टांत बन जाती है।गरीबी और भुखमरी तो पहले भी फिल्मों में दिखाई गई थी लेकिन वे

सह्य थे,गरिमापूर्ण थे और देखने के लिए थे,विक्षोभ पैदा करने के लिए नहीं थे ।[18] यहाँ सत्यजित राय की फिल्म पाथेर पांचाली को याद किया जा सकता है,जहां गरीबी ट्रेजिक मानव-नियति के रूप में चित्रित हुई है ।मृणाल सेन का यह कहना ध्यान देने योग्य है जब वे कहते हैं कि हमलोग हमेशा ही गरीबी को सम्माननीय और महिमामंडित करने की कोशिश करते रहे हैं।यह परम्परा पीढ़ियों से चली आ रही है जिसे आप बंगला साहित्य में खूब पा सकते हैं । जब तक आप गरीबी को गरिमापूर्ण ठहराते रहेंगे,व्यवस्था के कान में जू तक नहीं रेंगेगी ।हम *कलकत्ता ७१* में इतिहास को पारिभाषित करना चाहते थे,हम उसे सही परिप्रेक्ष्य में देखना चाहते थे।[19]

फिल्म की संरचना और वृत्तांत की तकनीक नितांत अपारम्परिक हैं। चार कहानियों के चार दिन मानो गीत के अंतरे हों और जिसकी स्थायी टेक फिल्म में 'विद्रोही' की उद्घोषणाएँ हैं ।आरम्भ में दृश्यों का कोलाज, आलाप की तरह पूरी रचना की प्रकृति को निर्धारित करने का काम करता है। लेकिन इस *गीतात्मक सरंचना* का प्रवाह चेतन रूप से खंडित और विच्छिन्न रखा गया है--- आकस्मिक पार्श्व-स्वर(वॉइस-ओवर),परदे पर लिपिबद्ध नारेबाजी,न्यूज-रील के टुकड़े, विवादी संगीत, ध्वनि – सेतु(साउंड-ब्रिज), 'क्रास-कट्स', 'जम्प कट्स' आक्रामक मोंटाज के सहारे मानो फिल्मकार दर्शकों के *चैन* को छीन लेना चाहता है,व्यावसायिक फिल्मों से प्राप्त आरामदायक अकर्मक स्थिति से उसे निकालकार सकर्मक हस्तक्षेप के लिए आमंत्रित करना चाहता है। संक्षेप में, इस फिल्म का उद्देश्य लैटिन अमेरिकी 'तीसरा सिनेमा' की तरह स्थिति का महज चित्रण करना नहीं है बल्कि उसकी बेहतरी के लिए

[18] ***"Of course, the absence of outrage, even as it might allow for the idealization of the highly questionable, does not make them inferior films, but it does preclude them from being political films. And the significance of this point is simply to highlight the distinction of the films about poverty and oppression made by Mrinal Sen..." Chasing the Truth, John W.Hood, Seagull Books,Calcutta,1993,p.20***

[19] ***"We have always been trying to make poverty respectable, and dignified. This has been a tradition which has been handed down to us from generation to generation. You can find plenty of this in Bengali literature. As long as you present poverty as something dignified, the establishment will not be disturbed. The establishment will not act adversely as long as you describe poverty as something holy, something divine. What we wanted to do in CALCUTTA-71 was to define history, put it in its right perspective."*** **Introducing Mrinal Sen by Udayan Gupta,*Jump Cut,* no. 12-13, 1976, pp. 9-10**

हस्तक्षेप करने की है[20]।यह भी सच है कि उन दिनों मृणाल सेन काफी लैटिन अमेरिकी फिल्में देख रहे थे।[21] वे फर्नान्दो सोलानस(१९३६--),आक्टेवियो गेतिनो(१९३५-२०१२),ग्लौबर रोचा (१९३९-१९८१)की फिल्मों से ही नहीं बल्कि उनके फ़िल्मी- दर्शन से भी प्रभावित हुए,विशेषकर ग्लोबर रोचा के इस कथन से कि कलाकार का उद्देश्य आघात पहुंचाना होता है।मृणाल सेन ने फर्नान्दो सोलानस की विख्यात फिल्म 'द आवर आफ द फर्नेसेस'(१९६८) के बारे में लिखा है:"*द आवर आफ द फर्नेसेस* एक घोषणापत्र है।पहले दृश्य से लेकर आखिर दृश्य तक यह निस्संकोच एक प्रचारात्मक फिल्म है।यह उपदेशात्मक है,यह आंदोलनात्मक है,यह विस्फोटक की तरह काम करता है। यह फिल्म, सार रूप में, किसी लड़ाकू कार्यवाही के दिशा-निर्देशक की तरह है ।[22] क्या यही बात कलकत्ता ७१ के बारे में भी कही जा सकती है?

मृणाल सेन कहते हैं कि जब वे *कलकत्ता ७१* बना रहे थे, कलकत्ता बहुत बुरे दौर से गुजर रहा था । हर दिन लोग मारे जा रहे थे ।कम्युनिस्ट पार्टी का सबसे लड़ाकू घडा नक्सल दल संसदीय राजनीति की हर प्रकार की गतिविधि को सिरे से खारिज कर चुका था।इसके साथ ही साथ कई बातों पर अन्य दो दलों के साथ उनका गंभीर झगड़ा था । इसका परिणाम कई अंतरदलीय मुठभेड़ के रूप में सामने आया और इसमें शामिल सभी लोगों ने व्यवस्था के खिलाफ सामाजिक शक्तियों को लामबंद करने के अपने मुख्य उद्देश्य की अनदेखी की...मैंने इस विक्षोभ को समझना चाहा,७१ की इस अशांति को व्याख्यायित करना चाहा और इसका कारण जानना चाहा ।इसकी उत्पत्ति मैं जानना चाहता था ।यह विक्षोभ अचानक कहीं से उद्भूत नहीं हो गया होगा । इसका जरूर कहीं न कहीं उद्गम और अंत होगा। मैंने इसकी उत्पत्ति खोजने की कोशिश की और इस प्रक्रिया में अपने इतिहास की पुनरव्याख्या की। और मेरी दृष्टि में यह चरम राजनैतिक काम था।[23]

---

[20] **Towards A Third Cinema, Fernando Solanas and Octavio Getino, in Bill Nichols(ed.)Movies and Methods,vol I,,p.56**
[21] **Over the Years,Ibid,p.66**
[22]**Views on Cinema,Ibid,p.112**

[23] ***"I made Calcutta 71 when Calcutta was passing through a terrible time. People were getting killed every day. The most militant faction of the Communist Party, the Naxalites, had rejected all forms of parliamentary politics. At the same time they had a host of differences with the other two Communist Party factions. This in turn led to many inter-party clashes and invariably all of them ignored the main issue of mobilizing forces against the vested interests – the***

प्राय: यह कहा जाता है कि राजनैतिक फ़िल्में अक्सर प्रचारात्मक होकर रह जाती हैं और यह विवाद तो बहुत पुराना है कि कला का क्या कोई उद्देश्य भी होता है और अगर हम यह मान लें कि हाँ इसका उद्देश्य होता है तब फिर क्या इसे प्रचारात्मक भी मानना होगा ?आखिर कहने वाले कहते ही हैं कि *बैटलशिप पोटेम्किन* एक प्रचारात्मक फिल्म ही तो है!लेकिन क्या यह भी उतना ही सच नहीं है कि नाजी जर्मनी और सोवियत रूस में बनने वाली अधिकाँश प्रचारात्मक (प्रोपेगंडा) फ़िल्में *बैटलशिप पोटेम्किन* की कलात्मक ऊँचाई के आसपास भी न पहुँच सके ? *कलकत्ता ७१* एक राजनैतिक फिल्म है जो प्रचारात्मक भी है लेकिन कलात्मक भी है।फिल्म की कलात्मकता, फिल्म की विषय-वस्तु को एक अनूठे रूप में ढाल पाने, एक अद्वितीय फिल्म-बंध के सहारे भारतीय दारिद्रय और वंचना और अपमान के प्रति एक प्रकार की अस्वीकार्यता, अग्राह्यता उत्पन्न कर सकने की बेजोड़ क्षमता में है।

छः

भुवन शोम,इंटरव्यू और कलकत्ता ७१ के बाद मृणाल सेन ने दो ही और ऐसी फ़िल्में बनाई,जिसे प्रयोगवादी कहा जा सकता है----*कोरस(१९७४)* और *आकालेर संधाने(१९८०)*;भारतीय फिल्म इतिहास में जब भी प्रयोगों,नवोन्मेषों और नवाचार की बात होगी,मृणाल सेन की इन पाँचो फिल्मों का उल्लेख कहीं न कहीं जरूर होगा।ये फ़िल्में इस बात की भी गवाह हैं कि कैसे कला का रूप कथ्य को प्रस्तुत करने का मात्र माध्यम नहीं होता बल्कि वह स्वयं कथ्य है।

कोरस का आरम्भ विदूषक/कीर्तनिया (रवि घोष) की इस कथा से होता है : एक राजा अपने दरबार में ज्ञानीजनों को बुलाकर पूछता है कि बताओ संसार में ऐसी कोई जगह है जहां अभाव न हो ? सभी ज्ञानीजनों ने एकस्वर से कहा कि जहां अभाव नहीं वहां ईश्वर नहीं ।लोगों को भक्त बनाने के लिए ही विधाता ने अभाव

establishment...I wanted to interpret the restlessness, the turbulence of the period that was 1971 and what it is due to. I wanted to have a genesis. The anger had not suddenly fallen out of anywhere. It must have a beginning and an end. I wanted to try to find this genesis and in the process redefine our history. And in my mind this was extremely political." **Introducing Mrinal Sen by Udayan Gupta, ibid**

की सृष्टि की। ओ मर्त्य ! मांगो भगवान तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेंगे ।भगवान मर्त्य भूमि पर अवतरित हुए हैं -----इतने तन्त्र, इतने मंत्र, इतने भगवान;अभाव ही तो इन्हें बनाता है शक्तिमान। देवियों और सज्जनों अब हम चलें मर्त्य-लोक जहां हैं भगवान कोट पैंट धारण किए, उन्हें प्रणाम ;प्रणाम दैवीय कर्मशाला और देवतागण,नमस्तस्ये नमस्तस्ये नमस्तस्ये नमो नम:।



और फिर फिल्म में *दैवीय कर्मशाला* का प्रपंच आरम्भ होता है जहाँ सौ पदों के लिए तीन हजार आवेदन दिए गए हैं ----सभी आवेदकों की निजी ज़िंदगी है ,उसकी परेशानियां हैं,विवशताएँ और महत्वाकाक्षाएँ हैं; फिल्मकार कुछ प्रतिनिधि जीवन स्थितियों के वृत्तात्मक चित्रण के सहारे तत्कालीन समाज के असंतोष और उसकी विद्रूपताओं को उस बिंदु पर ले जाने का प्रयास करते दिखाई देते हैं जहां यह नारा *सत्तर का दशक,मुक्ति का दशक* खोखला न जान पड़े।फिल्म में हाथ-कैमरे का अति विशिष्ट बर्ताव जहां इसे एक तात्कालिक आवेग से भर देता है वहीं पृष्ठभूमि-संगीत में ध्वनि का बेहद अभिनव प्रयोग फैंटेसी को यथार्थ से या यथार्थ को फैंटेसी से जोड़ने की अहम् भूमिका निभाता है। दैवीय कर्मशाला का प्रमुख जब 'कंट्रोल" कहता है तब पीछे से सेना के प्रयाण (मार्च) करने की आवाज सुनाई पड़ती है -------यह

हमें लुई बुनुवेल की बहुचर्चित फिल्म *द डिस्क्रीट चार्म आफ द बुर्जुआजी* (१९७२) की याद दिलाता है जहाँ पृष्ठ- ध्वनि का ऐसा ही सार्थक प्रयोग किया गया था । *'विधाता ने अभाव की सृष्टि की',* विदूषक का यह कथन फिल्म में जिस प्रकार धीरे-धीरे एक सामाजिक व्यंग्य के रूप में उभरता है,वह निर्देशक की दृश्य-भाषा की समझ का एक बेहतर दृष्टांत है ।अंतत: जन-आकाक्षाओं को दबाने के लिए दैवीय कर्मशाला को आपात्काल की घोषणा करनी पड़ती है। ब्रिटिश फिल्मकार लिंडसे एन्डरसन (१९२३-९४)ने कभी मृणाल सेन को कहा था कि मत भूलो कि आज की फंतासी कल का यथार्थ होने वाली है ।[24]इस फिल्म के प्रदर्शन के कुछ ही दिनों बाद भारत में आपात्काल की घोषणा (२६ जून १९७५ को) हुई । क्या यह मात्र संयोग था या कलाकार के दृष्टा होने का प्रमाण?

अकालेर संधाने में बंगाल के अकाल पर फिल्म बनाने की कहानी कही गयी है ---- लेकिन यह फिल्म जितना बंगाल के अकाल पर है उससे अधिक बंगाल के अकाल पर फिल्म बनाने पर है या दूसरे शब्दों में कहें तो यह फिल्म, एक स्तर पर, यथार्थ को कलाकृति में ढालने की प्रक्रिया को रेखांकित करना चाहती है और दूसरे स्तर पर किसी वर्तमान का अतीत से जो एक जटिल सम्बन्ध होता है,उसका भी पड़ताल करना चाहती है। मृणाल सेन कहते हैं कि वे इतिहास को एक निरन्तर विकासमान घटना के रूप में देखते हैं जो वर्तमान समय के चरित्रों में लगभग अगोचर तरीके से प्रवेश करता है।....*आकालेर संधाने* वस्तुत:अतीत और वर्तमान के असुविधाजनक,कष्टकर,अत्यंत सम्मोहक एवं असंभावी सम्बन्ध पर केन्द्रित है ।[25]

फिल्म का आरम्भ इस सूचना के साथ होता है कि कलकत्ता से एक फिल्म-निर्माण-दल बंगाल के अकाल (१९४३)पर फिल्म की शूटिंग के लिए आज सात सितम्बर १९८० को हातुई नामक गाँव जा रहा है और फिर कास्टिंग के साथ परदे पर तेज चलती गाड़ियों के काफिले दिखते हैं ---- सलील चौधरी द्वारा लिखित इप्टा का प्रसिद्ध गीत *'हाय सम्हालो धान हो,कास्तेता दाव शान हो'* सुनाई पड़ता है।गीत में

---

[24].Always Being Born, Mrinal Sen, A Memoir, Stellar Publisher Private Ltd, New Delhi, First Reprint,2006,p.121

[25]**In Search of Famine, Samik Bandopadhyay (Introduction, script reconstruction and translation),Seagull Books,Calcutta,1985,p.v**

आगे अकाल में लाखों के मरने और माँ-बहन की इज्जत खोने का जिक्र आता है और फिर यह प्रतिज्ञा कि अब हम अपना धान दूसरों के भण्डार में नहीं पहुंचाएंगे,हम भूख से नहीं मरेंगे,जमीन उसकी है जो जोतता है... स्पष्ट है कि फिल्मकार दर्शकों को एक ऐसी फिल्म देखने के लिए आमंत्रित कर रहा है जिसमें एक सन्देश तो है ही,आत्मसजगता भी है ।



आकालेर संधाने में स्मिता पाटिल

फिल्म की शूटिंग के दौरान ४३ के अकाल का यथार्थ समकालीन यथार्थ से टकराता है,वर्तमान का अतीत से सीधा सम्बन्ध जुड़ता दिखाई देता है----कुछ की जीवन स्थितियां अब भी हू-ब-हू वैसी ही बनी हुई हैं----वर्तमान में दुर्गा (श्रीला मजुमदार)के परिवार की कथा और फिल्म में सन ४३ की स्मिता पाटिल के परिवार की कथा में कोई अंतर नहीं है ; लेकिन अकाल कुछ के लिए लाभदायक भी सिद्ध हुआ था और आश्चर्य नहीं कि वही लोग जिन्होंने अकाल का फ़ायदा उठाकर औने पौने दामों में गरीबों की जमीन हड़प ली थी ,फिल्म वालों का गाँव में विरोध करते

हैं और अंतत: जिसकी वजह से उन्हें बिना फिल्म पूरी किए कलकत्ता लौट जाना पड़ता है। मृणाल सेन ने लिखा है कि, “यह फिल्म सवाल करती है कि क्या हमलोग जो यथार्थवाद की हर समय दुहाई देते रहते हैं,अपनी कला मे यथार्थ का वस्तुगत चित्रण कर पाए हैं,या किस हद तक इसमें सफल हो पाए हैं?दूसरे शब्दों में,हम अपनी कलात्मक कृतियों में कितनी ईमानदारी बरत पाए हैं,और हम खुद से कब और कहाँ छलावा करते हुए तथाकथित सौंदर्यशास्त्र के पीछे छिपने की कोशिश करने लगे हैं ।कम से कम मैं वहां पहुँच गया हूँ जहां से मैं जोर देकर यह कह सकता हूँ कि यथार्थ की भौतिकता और कलाकार द्वारा उसके उद्धार के बीच एक अंतर होता है जिसके बारे में उसे पता हो सकता है और नहीं भी हो सकता है। कलाकार अक्सर इस अंतर को अपनी तकनीक और जिसे हमलोग कलाकारी कहते हैं उसके द्वारा ढकने की कोशिश करते हैं ...आकालेर संधाने में हमलोगों ने अपनी असमर्थताओं को स्वीकार किया है।”[26]

यह सच है कि इस फिल्म में अकाल के *यथार्थ की भौतिकता का उद्धार* फिल्मकार ने बेहद आत्म-सजग(सेल्फ-रिफ्लेक्सिव) ढंग से कुछ अनूठे सिनेमाई युक्तियों द्वारा किया है-----इतिहास को समकालीनता के समक्ष तथा कला को यथार्थ के सामने रू-ब-रू कर देने मात्र से किस प्रकार दोनों का चरित्र स्पष्ट हो जाता है,यह देखने की चीज है।यहाँ कथात्मकता और वृत्तचित्रात्मकता,वास्तविकता और गल्पहीनता को दो ध्रुवों की तरह नही बरता जा सकता था बल्कि उस शैली की जरूरत थी जिसे फिल्मकार ने “मूलत: वृतान्तहीन ,वास्तविकता के विवरण के साथ कथात्मक और वृतचित्रात्मक का सुविचारित सम्मिश्रण की शैली”[27] कहा है। कहना होगा कि यह शैली इस फिल्म की एक उपलब्धि है।

सात

कहा जाता है कि जब हम दूसरों से लड़ते हैं,संवाद करते है,तब गद्य का जन्म होता है और जब हम स्वयं से लड़ते हैं,खुद से बातें करते हैं तब कविता का जन्म होता है; क्या इसी प्रकार का वर्गीकरण फिल्मों का भी किया जा सकता है? मृणाल सेन ने

---

[26]In Search of Famine, ibid,p.vii
[27] Ibid,p v

लिखा है कि जब उन्होंने बंगाल में वामपंथी सरकार की असफलताओं को महसूस किया तब उन्हें यह एहसास हुआ कि अब शत्रु को बाहर इंगित करने के बजाय स्वयं उसे अपने अन्दर ढूँढना आवश्यक है।यही वह समय था जब उन्होंने *एक दिन प्रतिदिन (१९७९)* जैसी फ़िल्में बनानी शुरू की।[28] आगे चलकर इसी कड़ी में *खंडहर(१९८३),जेनेसिस(१९८६),एक दिन अचानक(१९८९),महापृथ्वी (१९९१),अंतरीन (१९९३)* जैसी फ़िल्मों को रखा जा सकता है। मृणाल सेन ने स्वीकार भी किया है कि *एक दिन प्रतिदिन* से उनका मुख्य लक्ष्य व्यक्ति के आतंरिक संसार -----उसके रहस्य,उसकी कुंठा,उसके संदेह और अंतत:उसकी गुप्त शक्तियां को उद्घाटित करना हो गया था।[29]



खँडहर में शबाना आजमी और गीता सेन

यह सच है कि इन फिल्मों के केंद्र में व्यक्ति है -----उसकी उत्पत्ति,नियति,प्रारब्ध,अकेलेपन की पीड़ा को इसमें समझने की कोशिश की गयी है ।ये वे फ़िल्में हैं जिनमें व्यक्ति के आतंरिक परिदृश्य को,उसके अंतर्मन को उकेरने

[28] **Over the Years,ibid,p.79**

[29] **Montage,Ibid,p.185**

का प्रयत्न हुआ है,लेकिन यह प्रयत्न अवचेतन के विश्लेषण या मनोविश्लेषण के सहारे नहीं जैसा हिचकाक या बुनुएल के फिल्मों में हुआ है बल्कि चेतन स्तर पर चरित्रों की प्रतिक्रियाओं को,उनकी गतिविधियों को,उनके रोजनामचे को कुछ इस तरह प्रस्तुत किया गया है कि वे चरित्रों के अंतर को आलोकित करने वाले दीये बन जाते हैं, दर्शकों को प्रकाश से आलोकित दृश्य दीखता है,प्रकाश नहीं ।

मृणाल सेन की इन अंतर्मुखी फिल्मों में अकेलेपन के कई रंग हैं----- *खँडहर* की माँ और बेटी की खंडहरनुमा जिन्दगी का अकेलापन, *जेनेसिस* के उजाड़ धूसर परित्यक्त गाँव में निर्वासितप्राय एक स्त्री और दो पुरूष का अकेलापन, *एक दिन अचानक* और *महापृथ्वी* में अपने किसी प्रिय के अनुपस्थित हो जाने पर रिक्तता का अकेलापन और *अंतरीन* की नायिका के उस निचाट अकेलेपन को कौन भुला सकता है जो घुन की तरह व्यक्ति के रेशे- रेशे को कुतरता ही जाता है !



एक दिन अचानक में उत्तरा बावकर और शबाना आजमी

किसी की अनुपस्थिति, श्रृंखला की एक कड़ी के टूटने की तरह होती है---- टूटने पर ही श्रृंखला के बनने की प्रक्रिया का पता चलता है । *एक दिन प्रतिदिन, एक दिन*

अचानक,महापृथ्वी,खारिज में मृणाल सेन ने अनुपस्थिति के सहारे उपस्थित करने का जो कौशल अर्जित किया, वह एक बेहद कारगर सिनेमाई युक्ति साबित हुआ। *एक दिन प्रतिदिन* की चीनू (ममता शंकर)पूरी फिल्म में अनुपस्थित रहकर निरंतर उपस्थित रहती है और *एक दिन अचानक* के प्रोफ़ेसर शशांक (डा.श्रीराम लागू)घर छोड़ कर चले जाने के बाद ही वे सजीव रूप से उपस्थित होते हैं;*महापृथ्वी* में आत्महत्या के बाद माँ(गीता सेन) की उपस्थिति और खारिज में नौकर की मृत्यु के बाद उसकी उपस्थिति को जिस प्रकार फिल्मकार ने विकसित किया है,उसे फिल्म में चरित्र चित्रण की एक बिलकुल अनूठी प्रविधि के रूप में चिह्नित किया जा सकता है। मृणाल सेन की ये फ़िल्में यह दिखलाती हैं कि हर परिवार के कुछ रहस्य होते हैं ,जो प्राय: घरों के कोनों-अंतरों में छुपे रहते हैं,किसी सदस्य की अनुपस्थिति ही मानो उन्हें बाहर आने को विवश या बाध्य करती है।



अंतरीन में डिम्पल

एक दूसरे प्रकार की अनुपस्थिति *अंतरीन* फिल्म में दृष्टिगोचर होता है ।अंतरीन की नायिका अपने अकेलेपन से उबरने के लिए हर रात किसी अजनबी को फोन करती है,उसकी व्यथा-कथा सुनने के लिए इस संसार में कोई नहीं है ।एक रात जब उसके फोन की तार किसी ऐसे व्यक्ति से जुड़ जाती है जो रवीन्द्रनाथ ठाकुर की प्रख्यात कथा-कृति क्षुधित पाषाण नुमा हवेली में अकेला किसी सृजना के क्षण की प्रतीक्षा कर रहा है -----कुछ अघटित घटता है ...सुनने-सुनाने का सिलसिला आरम्भ होता है,फ्रायडीय मुक्त आसंग की तरह।फ्रायड ने डाक्टर(सुनने वाला)और रोगी(सुनानेवाले) के बीच जिस अन्तरण(ट्रान्सफेरेन्स) की वकालत की थी[30], वह घटित होते-होते तब रह जाता है जब नायिका मिलने से इनकार कर देती है।*क्षुधित पाषाण* की बंदी नायिका सहायता की गुहार लगाती है,*अंतरीन* की नायिका सहायता देने वाले को ढूँढने के बजाय खुद को ढूँढती है ।यह अपने स्व की अनुपस्थिति की पहचान है।



जेनेसिस में ओम पुरी,शबाना आजमी और नसीरूद्दीन शाह

[30] ***"...the transference,which,whether affectionate or hostile, seemed in every case to constitute the greatest threat to the treatment, becomes its best tool, by whose help the most secret compartments of mental life can be opened."*** **Introductory Lectures On Psychoanalysis, Sigmund Freud,Shrijee's Book International, New Delhi, First Impression,2003,pp.507-508**

जेनेसिस की महत्वाकांक्षा एक रूपक-कथा बनने की थी-----आदिम-साम्यवाद से लेकर पूंजीवाद तक मानव-सभ्यता के विकास की रूपक-कथा,जिसमें निजी संपत्ति के उदय,नारी - पराधीनता और पितृसत्ता की स्थापना की कहानी भी शामिल होनी थी। अफ़सोस कि यह फिल्म ऐसा करने में सफल न हो पाई लेकिन अधिकार-भाव को केंद्र में रखकर एक स्त्री और दो पुरूष के बीच जिस त्रिकोणात्मक सम्बन्ध की पड़ताल यह फिल्म करती है ,वह अपनी प्रकृति में सर्वकालिक कही जा सकती है।फिल्म यह प्रश्न उठाने में भी सफल रही है कि क्या कोई भी सम्बन्ध अधिकार की अनुपस्थिति में संभव है?क्या मानव इतिहास सम्बन्ध का इतिहास नहीं है और क्या सम्बन्ध अधिकार बोध से ही आरम्भ नहीं होता है ?

आठ

मृणाल सेन ने अपनी फिल्मों और टी.वी. धारावाहिकों का आधार आरम्भ से साहित्यिक कृतियों को बनाया -----बांग्ला ,उड़िया,हिन्दी और उर्दू की वे मानक साहित्यिक रचनाएँ थीं। बांग्ला कृतिकारों की रचनाओं में रवीन्द्रनाथ ठाकुर (ईच्छापूरण)मणिक बंदोपाध्याय,प्रबोध सान्याल,समरेश वसु,अजितेश बंदोपाध्याय (कलकत्ता ७१) स्वराज बनर्जी (रातभोर) कनाई वसु (बाईसे श्रावण)आशीष वर्मन(पुनश्च,आकाश कुसुम,इंटरव्यू,पदातिक),अचिन्त्य कुमार सेनगुप्ता (अवशेष,प्रतिनिधि),अमलेंदु चक्रवर्ती (एक दिन प्रतिदिन,अकालेर सन्धान) रामपद चौधरी(खारिज,एक दिन अचानक),अंजन दत्ता (महापृथ्वी),सुबोध घोष(एक अधूरी कहानी),प्रमेन्द्र मित्र(खँडहर),बनफूल(भुवन सोम); उडिया रचनाकारों में भगवती चरण पाणिग्रही (मृगया)कालिंदी चरण पाणिग्रही(माटिर मानीष), हिन्दी रचनाकारों में प्रेमचंद (ओका उरी कथा),महादेवी वर्मा (नील आकाशेर नीचे)और उर्दू में मंटो(अंतरीन) का नाम लिया जा सकता है।यहाँ इस बात पर ध्यान जाता है कि मृणाल सेन ने छः फ़िल्में हिन्दी में बनाई लेकिन वे किसी हिन्दी रचना पर आधारित नहीं हैं और जिन दो हिन्दी रचानाओं को उन्होंने चुना उनपर उन्होंने हिन्दी में नहीं बल्कि बांगला और तेलुगु में फ़िल्में बनाईं।दूरदर्शन के लिए भी उन्होंने हिन्दी में कई टेलीफिल्में बनाई लेकिन एक भी, किसी हिन्दी कृति पर नहीं ----कलकत्ता दूरदर्शन के लिए *तस्वीर अपनी अपनी* (१९८४) और राष्ट्रीय

दूरदर्शन के लिए *कभी दूर कभी पास* (१९८५-८६)के अंतर्गत चालीस मिनट की तेरह लघु फ़िल्में बनाईं;वह सभी बांगला रचनाकारों की कृतियों पर आधारित थीं -----अचिन्त्य कुमार सेनगुप्ता(दस साल बाद,रविवार,सालगिरह)नरेन्द्रनाथ मित्रा(दो बहनें),दीपेंद्रनाथ बंद्योपाध्याय (आईना)मोती नंदी(जीत भाग एक और दो),रामपद चौधरी(आजकल,कभी दूर कभी पास),दिव्येंदु पालित(अजनबी,शाल)और स्वयं मृणाल सेन की कहानी पर (स्वयंवर,अपराजित) आधारित थीं। क्या इसे राधाकृष्णन की इस अवधारणा का साक्ष्य माना जा सकता है जहां वे कहते हैं कि भारतीय साहित्य एक है यद्यपि वह बहुत-सी भाषाओं में लिखा जाता है[31]या इसी तर्ज पर यह कहा जाए कि भारतीय फिल्म एक है यद्यपि बनाई बहुत-सी भाषाओं में जाती है ?

नौ

साहित्य और सिनेमा का रिश्ता सीधा-सरल नहीं है -----महान साहित्य पर घटिया फ़िल्में और घटिया साहित्य पर महान फ़िल्में बनते देखकर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि दोनों का सम्बन्ध थोड़ा जटिल है ।संबंधों की पड़ताल करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि ये दो भिन्न माध्यम हैं,जिनकी अपनी भाषा है, अपना व्याकरण है,अपने मूलाधार हैं ----जहां साहित्य का मूलाधार शब्द है,वहीं सिनेमा का बिम्ब(इमेज)। शब्द (साहित्य)को जब बिम्ब(सिनेमा) में ढाला जाता है तब बिम्ब की अपनी कुछ शर्तें होती हैं ----कुछ विधागत और कुछ बिम्बकर्ता (फिल्मकार) की।यह फिल्मकार के अवबोध(पर्सेप्सन) पर निर्भर करता है कि वह फिल्म की विधागत शर्तों को साहित्य पर कैसे लागू करता है या साहित्य को अपने तईं व्याख्यायित करने के क्रम में फिल्म के विधागत शर्तों को कैसे गढ़ता है ।

प्रेमचंद की विख्यात कहानी *कफ़न* पर फिल्म बनाने के लिए पटकथा लिखने के दौरान मृणाल सेन ने तीन मुद्दों के प्रति हमेशा निष्ठावान बने रहने की प्रतिज्ञा की थी -----पहला ,लेखक के उस मूल मंतव्य के प्रति जो रचनाकार अपनी रचना के माध्यम से संप्रेषित करना चाहता है;दूसरा बिंदु कलात्मक अभिव्यक्ति के उस रूप

[31] तुलनात्मक साहित्य:भारतीय परिप्रेक्ष्य,इन्द्रनाथ चौधरी,वाणी प्रकाशन,दिल्ली,प्रथम संस्करण २००६,पृष्ठ ९९ पर उधृत

के प्रति जिसे सिनेमा कहा जाता है और तीसरा बिंदु अपने वर्तमान समय और काल के प्रति।[32]अगर ध्यान से देखें तो ये तीनों ही चीजें आत्मनिष्ठ हैं ----न तो लेखक के मूल मंतव्य को वस्तुनिष्ठ ढंग से एकलौते अर्थ में न्यूनीकृत किया जा सकता है,न कलात्मक अभिव्यक्ति के रूप में सिनेमा की कोई विवादहीन, एकमात्र सर्वस्वीकृत पहचान संभव है और न वर्तमान समय और काल की ही कोई निरापद व्याख्या हो सकती है।ऐसे में सिनेमा का साहित्य के प्रति निष्ठा का सवाल समस्यामूलक हो जाता है।



कफ़न के बाप-बेटे : वासुदेव राव और नारायण राव

प्रेमचंद की कहानी कफ़न में तीन चरित्र हैं-----बाप घीसू,बेटा माधव और बेटे की पत्नी बुधिया ।बुधिया प्रसव-वेदना से छटपटा रही है और बाहर आलसी और कामचोर बाप-बेटे आराम से चुराए हुए आलू पका कर खा रहे हैं ----बुधिया के दर्द

[32] Montage,Ibid,p.259

से लगभग निस्पृह वे दोनों खाने के बाद सो जाते हैं ।सुबह उठने पर पता चलता है कि वह बुधिया मर चुकी है जिसके आने से उनकी जिन्दगी में थोड़ी व्यवस्था आ गयी थी,जिसके श्रम से उन्हें पेट भर खाना नसीब हो जाता था ।गाँव वालों से भीख मांगकर बाप -बेटे कफ़न के लिए पैसा इकट्ठा करते हैं लेकिन उन पैसों से कफ़न खरीदने के बदले मधुशाला पहुँच जाते हैं, कहानी का यह (अंतिम) दृश्य हर दृष्टि से अत्यंत उल्लेखनीय है,देखिए :

"दोनों एक-दूसरे के मन की बात ताड़ रहे थे। बाजार में इधर-उधर घूमते रहे। कभी इस बजाज की दूकान पर गये, कभी उसकी दूकान पर! तरह-तरह के कपड़े, रेशमी और सूती देखे, मगर कुछ जँचा नहीं। यहाँ तक कि शाम हो गयी। तब दोनों न जाने किस दैवी प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने जा पहुँचे। और जैसे किसी पूर्व निश्चित व्यवस्था से अन्दर चले गये। वहाँ जरा देर तक दोनों असमंजस में खड़े रहे। फिर घीसू ने गद्दी के सामने जाकर कहा-साहूजी, एक बोतल हमें भी देना।

उसके बाद कुछ चिखौना आया, तली हुई मछली आयी और दोनों बरामदे में बैठकर शान्तिपूर्वक पीने लगे।

कई कुज्जियाँ ताबड़तोड़ पीने के बाद दोनों सरूर में आ गये।"

....

माधव बोला-मगर दादा, बेचारी ने जिन्दगी में बड़ा दु:ख भोगा। कितना दु:ख झेलकर मरी!

वह आँखों पर हाथ रखकर रोने लगा। चीखें मार-मारकर।

घीसू ने समझाया-क्यों रोता है बेटा, खुश हो कि वह माया-जाल से मुक्त हो गयी, जंजाल से छूट गयी। बड़ी भाग्यवान थी, जो इतनी जल्द माया-मोह के बन्धन तोड़ दिये।

और दोनों खड़े होकर गाने लगे-

'ठगिनी क्यों नैना झमकावे ! ठगिनी।

पियक्कड़ों की आँखें इनकी ओर लगी हुई थीं और यह दोनों अपने दिल में मस्त गाये जाते थे। फिर दोनों नाचने लगे। उछले भी, कूदे भी। गिरे भी, मटके भी। भाव भी बताये, अभिनय भी किये। और आखिर नशे में मदमस्त होकर वहीं गिर पड़े।"[33]

कहानी का यह अंत एक आदर्श चरमोत्कर्ष की दृष्टि से ही नहीं बल्कि इन दो मुख्य चरित्रों के मनोविज्ञान को समझने की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है ।कहानी के संश्लिष्ट प्रभाव के लिए इससे बेहतर अंत की कल्पना नहीं की जा सकती थी। यह समझना मुश्किल है कि क्यों मृणाल सेन ने *ओका उरी कथा* में इस अत्यंत महत्वपूर्ण अंश को पूरी तरह से अनदेखी करने का निर्णय लिया ।अब हम अगर उनकी फिल्म के अंतिम दृश्य को देखें तो वहां पाते हैं कि फिल्मकार ने नितांत मौलिक अंत की सृष्टि की है -----कफ़न के लिए भीख में पाए पैसों को पिता मुट्ठियों में भींचकर पुत्र से कहता है,*मेरे हाथ को पकड़ लो और इसे जितने जोर से दबा सकते हो,दबावो।देखो कितना अच्छा लगता है!अगर हर रोज हमारे हाथ यूं ही पैसों से भरे रहें तो एक जादुई ताकत हमारे हाथ होंगे ।हम जो भी चाहेंगे वह पूरा होगा ।इसे कस कर पकड़े रहो और बोलो ---छू मंतर!अबराकादबरा ...दो धान का दो बोरा,चिथड़ों के बदले दो बढ़िया कपड़ा,झोपडी के बदले दो बढ़िया मकान,दे दो हमारे मृत बच्चों को प्राण , दे दो हमारे मृत बच्चों को प्राण !* और बुधिया के मृत चेहरे के फ्रीज़ -फ्रेम के साथ फिल्म का अंत हो जाता है।यहाँ पिता पैसे की जिस ताकत का बखान कर रहे हैं या मखौल उड़ा रहे हैं क्या कहानी का वही मंतव्य है ? पैसे की जादुई ताकत से जो मृत बच्चों को प्राण देने की प्रार्थना की जा रही है,क्या वह कहानी की मूल सम्वेदना से तनिक भी मेल खाती है?क्या यह दृश्य किसी भी चरित्र के कोनो अंतरों पर कोई रौशनी डालती है?फिल्म या कहानी में चरमोत्कर्ष नहीं भी हो सकते है लेकिन अंत तो ऐसा हो जो पूरी रचना को एक पूर्णता तो प्रदान करे -------पूर्णाहूति की तरह ;क्या यह अंत फिल्म के पूरे हो जाने का एहसास

---

[33] प्रतिनिधि कहानियां:प्रेमचंद,भीष्म साहनी(सम्पादक),राजकमल प्रकाशन,दिल्ली,सातवीं आवृति २००८, ,पृष्ठ १३९

कराती है? संक्षेप में, अगर मृणाल सेन के ही ऊपर उद्धृत शब्दों में कहें तो रचनाकार अपनी रचना के माध्यम से जो संप्रेषित करना चाहता है लेखक के उस मूल मंतव्य के प्रति क्या फिल्मकार निष्ठावान रह पाया है?

मृणाल सेन *कफ़न* को गरीबी और शोषण की ऐसी कहानी मानते हैं जिसे भारत के किसी भी कोने में देखा जा सकता है---यही नहीं बल्कि वह यह भी बताते हैं कि कान्स फिल्म उत्सव में इस फिल्म को देखकर फर्नान्डो सोलानास को अपने देश अर्जेंटीना की याद आ रही थी[34] यानी वे इस कहानी को देश और काल से परे मानते हैं। आश्चर्य नहीं कि कहानी का शीर्षक *कफ़न*, फिल्म में *एक गाँव की कहानी(ओका उरी कथा)* में बदल गया है ।



ओका उरी कथा में ममता शंकर (बुधिया)

[34] **Always Being Born,Ibid,p.131**

प्रेमचंद की कहानी में बाप-बेटे विशिष्ट चरित्र हैं ,वे किसी वर्ग,किसी समुदाय के प्ररूप (टाइप) चरित्र नहीं हैं; देखिए, प्रेमचंद घीसू माधव के बारे में क्या कहते हैं: *"घीसू एक दिन काम करता तो तीन दिन आराम करता। माधव इतना काम-चोर था कि आध घण्टे काम करता तो घण्टे भर चिलम पीता। इसलिए उन्हें कहीं मजदूरी नहीं मिलती थी। घर में मुठ्ठी-भर भी अनाज मौजूद हो, तो उनके लिए काम करने की कसम थी। जब दो-चार फाके हो जाते तो घीसू पेड़ पर चढक़र लकडिय़ाँ तोड़ लाता और माधव बाजार से बेच लाता और जब तक वह पैसे रहते, दोनों इधर-उधर मारे-मारे फिरते। गाँव में काम की कमी न थी। किसानों का गाँव था, मेहनती आदमी के लिए पचास काम थे। मगर इन दोनों को उसी वक्त बुलाते, जब दो आदमियों से एक का काम पाकर भी सन्तोष कर लेने के सिवा और कोई चारा न होता। अगर दोनो साधु होते, तो उन्हें सन्तोष और धैर्य के लिए, संयम और नियम की बिलकुल जरूरत न होती। यह तो इनकी प्रकृति थी। विचित्र जीवन था इनका! घर में मिट्टी के दो-चार बर्तन के सिवा कोई सम्पत्ति नहीं। फटे चीथड़ों से अपनी नग्नता को ढाँके हुए जिये जाते थे। संसार की चिन्ताओं से मुक्त कर्ज से लदे हुए। गालियाँ भी खाते, मार भी खाते, मगर कोई गम नहीं। दीन इतने कि वसूली की बिलकुल आशा न रहने पर भी लोग इन्हें कुछ-न-कुछ कर्ज दे देते थे। मटर, आलू की फसल में दूसरों के खेतों से मटर या आलू उखाड़ लाते और भून-भानकर खा लेते या दस-पाँच ऊख उखाड़ लाते और रात को चूसते। घीसू ने इसी आकाश-वृत्ति से साठ साल की उम्र काट दी और माधव भी सपूत बेटे की तरह बाप ही के पद-चिह्नों पर चल रहा था, बल्कि उसका नाम और भी उजागर कर रहा था।"*[35]

मृणाल सेन घीसू-माधव के इस *विचित्र जीवन* को अपनी फिल्म में एक सामान्य शोषित के जीवन में बदल देते हैं ------कहानी की अपनी देश-निरपेक्ष व्याख्या के अनुरूप फिल्म में बाप-बेटे को टाइप-चरित्र में ढाल देते हैं।लेकिन ऐसा करने में सबसे बड़ी बाधा कहानी का अंतिम अंश था जहां चरित्र को किसी भी प्रकार के चौखटे में जकड़ा नहीं जा सकता था, किसी भी प्रकार का सामान्यीकरण संभव ही

[35] कफ़न,वही,पृष्ठ १३४

न था। इ..एम.फोर्स्टर के शब्दों में कहें तो वहां गोलाकार चरित्र को सपाट नहीं बनाया जा सकता था ।[36] परिणामत: फिल्म में कहानी के अंत को बदल कर व्याख्यानुकूल उल्लिखित अंत की परिकल्पना की गयी।

अधिकाँश साहित्यिक रचनाएं जिन पर मृणाल सेन की फिल्में आधारित हैं वे फिल्मकार के लिए उस मिट्टी की तरह हैं जिसे मूर्तिकार मूर्ति गढ़ने के लिए प्रयोग तो करता है लेकिन उसे अपनी परिकल्पित मूर्ति के अनुकूल बनाकर ----उस मिट्टी से वह बहुत कुछ हटाता है, बहुत कुछ उसमें मिलाता है,फिर उसे पीटता है, गूंथता है और इस तरह उसके एक एक रेशे को अपनी उँगलियों की ऊष्मा देता है। मूर्ति मिट्टी की बनती है लेकिन क्या वह मात्र मिट्टी है?सहादत हसन मंटो की कहानी *बादशाहत का खात्मा* पर मृणाल सेन *अंतरीन* बनाते हैं लेकिन *अंतरीन* सिर्फ *बादशाहत का खात्मा* नहीं है -------इसमें रवीन्द्रनाथ ठाकुर का *क्षुधित पाषाण* मिला हुआ है,फ्रायड की अंतर्दृष्टि भी मिली हुई है और भी बहुत कुछ है । जहां *बादशाहत का खात्मा* एक मामूली किस्म की भावुक प्रेम कहानी है ----एक बेघर बेरोजगार का टेलीफोन से किसी लडकी की आवाज से प्रेम हो जाना ;कहानी के केंद्र में नायक मनमोहन है,जिसके बारे में कहानीकार कहता है कि *ज़िंदगी में सिर्फ़ उसको एक चीज़ की हसरत थी औरत की मोहब्बत की। "अगर मुझे किसी औरत की मोहब्बत मिल गई तो मेरी सारी ज़िंदगी बदल जाएगी।"*[37] वहीं अंतरीन के केंद्र में एक ऐसी नायिका है जो घर और बाहर दोनों ही मोर्चों पर हार कर टूटी हुई बिखरी हुई अपने अस्तित्व की गहराइयों में उतरती है -----किसी से जुड़ कर,चाहे वह फोन के तार से ही क्यों न हो, अपने होने का अर्थ ढूँढना चाहती है ।फोन के दूसरी ओर एक ऐसा व्यक्ति है जो अभी अभी एक वीरान उजाड़ हवेली में इसलिए पहुंचा है कि वह शहर के शोरोगुल(ध्वनि प्रदूषण) से दूर रहकर कुछ लिख सके -----फिल्मकार उसके बारे में और कुछ भी नहीं बताता है,सिवा इसके कि वह अपने राजपुत्र मित्र दिलीप के अनुरोध पर उसके इस राजबाड़ी में कुछ दिन के लिए ठहरा हुआ है। नायिका से फोन पर संवाद स्थापित होने पर एक दिन नायक उसे बताता है कि वह यहाँ रविन्द्रनाथ ठाकुर की क्षुधित पाषाण ढूँढने आया है । फिर आरम्भ होता है क्षुधित पाषाण के चुनिन्दा अंशों के सहारे बंदिनी स्त्री(फिल्म की नायिका और

---

[36] **,Aspects of Novel, E.M.Forster, Harcourt Brace & company, New York, First Edition,1927,p.103**

[37] बादशाहत का खात्मा, सहादत हसन मंटो,वाणी प्रकाशन,प्रथम संस्करण,२०१२,पृष्ठ ६८

क्षुधित पाषाण की नायिका) की समानांतर और परस्पर यात्रा: *"तुम मेरा उद्धार करके ले चलो----कठिन माया,गंभीर निद्रा,निष्फल स्वप्नों के समस्त दरवाजों को तोड़ फेककर,तुम मुझे घोड़े पर बैठाकर ,अपनी छाती से चिपटाकर,वन के भीतर होते हुए,पहाड़ के ऊपर होते हुए,नदी पार करके अपने सूर्यालोकित घर के भीतर मुझे ले जाओ ।मेरा उद्धार करो ।*

" मैं कौन हूँ?मैं किस प्रकार उद्धार करूंगा?[38]

यह प्रश्न *क्षुधित पाषाण* के नायक का न होकर अब फिल्म के नायक- लेखक का हो जाता है ।फिल्म में इस पहलू को इतना विस्तार दिया गया है कि *बादशाहत का खात्मा* नामक कहानी बहुत पीछे छूट जाती है ---इतना पीछे कि इस फिल्म की कथा के लिए मंटो को श्रेय नहीं भी दिया जाता तो अन्यायपूर्ण नहीं कहलाता।



नील आकाशेर नीचे में मंजू दे और काली बनर्जी

[38] क्षुधित पाषाण, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, (अनु.राजेश दीक्षित),प्रभात प्रकाशन,मथुरा,प्रथम संस्करण,१९५८ ,पृष्ठ १४

इसी प्रकार *नील आकाशेर नीचे* में महादेवी की स्मृति की रेखाएं(*चीनी फेरीवाला*) कम है, तीस के दशक के भारत की तस्वीर ज्यादा है और उसमें भी भारतीय लोकप्रिय फिल्मों की आलंकारिक युक्तियों ---- नाच-गानों को समावेश कर लेने से फिल्म का रूप कुछ और हो गया है। महादेवी का चीनी फेरीवाला कलात्मक रुचि संपन्न व्यक्ति है :*नीली दीवार पर किस रंग के चित्र सुन्दर जान पड़ते हैं,हरे कुशन पर किस प्रकार के पक्षी अच्छे लगते हैं,सफ़ेद परदे के कोनों में किस बनावट के फूल पत्ते खिलेंगे आदि के विषय में चीनी उतनी ही जानकारी रखता था,जितनी किसी अच्छे कलाकार में मिलेगी ।रंग से उसका अति परिचय यह विश्वास उत्पन्न कर देता था कि वह आँखों पर पट्टी बाँध देने पर भी स्पर्श से रंग पहचान लेगा।* [39] *नील आकाशेर नीचे* के वांग लू को देखकर ऐसा विश्वास नहीं उत्पन्न होता।कारण शायद यह है कि फिल्मकार ने जिस टाइप्ड चरित्र में उसे ढालने की कोशिश की है,उसके लिए संभवत: कलात्मक रुचि संपन्न होना आवश्यक नहीं। फिल्म के आरम्भ में ही यह घोषणा है: *सन १९३० का कलकत्ता :आजादी की उत्कंठा से लबरेज ।पूरे देश में आजादी के लिए घनघोर ललक ,वे कभी न भूलने वाले दिन थे ।और वह कभी न भूलने वाली कहानी थी जो एक ऐसे आदमी की थी जो एक निरक्षर ,भोला भाला चीनी फेरीवाला था जिसके पावों के निशान बहुत पहले कलकत्ता की गलियों से मिट चुके थे। यद्यपि ऐतिहासिक रूप से वह कोई नायक नहीं था, लेकिन उसका नाम उन कठिन दिनों से अविभक्त ढंग से जुड़ा हुआ है ।*

महादेवी वर्मा का *चीनी फेरीवाला* एक मानवीय दस्तावेज है,मृणाल सेन उसे ऐतिहासिक दस्तावेज बनाना चाहते हैं ----उनके लिए *अपने समय के प्रति निष्ठावान* बने रहने का यही तात्पर्य है।संभवत:यही वजह है कि भगवतीचरण पाणिग्रही(१९०७-१९४३) की कहानी *शिकार* पर जब मृणाल सेन *मृगया* बनाते हैं तो यह एक आदिवासी युवक के सरल *अ-मानवकेन्द्रित* जीवन-शैली की कहानी नहीं रह जाती बल्कि अपने विस्तार में,समकालीन मुख्य-धारा की, *मानववादी* सभ्यता की चरम केन्द्रीयता की पृष्ठभूमि में वैकल्पिक जीवन-दर्शन की लोमहर्षक परिणति की एक कारुणिक कथा बन जाती है । मृणाल सेन ने *मृगया* के बारे में कहा भी है कि इतिहास की अपनी समझ के अनुसार उन्होंने चरित्रों और स्थितियों

---

[39] स्मृति की रेखाएं, महादेवी वर्मा,लोकभारती प्रकाशन,इलाहाबाद,२००८,पृष्ठ २२

को पारिभाषित किया था और दर्शकों से उनकी अपेक्षा थी कि वे कोई सरल निष्कर्ष निकालने के बजाय उसके परे जाकर सोचेंगे ।[40]साहित्य पर आधारित मृणाल सेन की अधिकाँश फिल्मों में फिल्मकार की यही कोशिश और दर्शकों से यही अपेक्षा की गयी है ।


मृगया में मिथुन चक्रवर्ती और ममता शंकर

दस

मृणाल सेन की संस्मरण-पुस्तक के एक अध्याय का शीर्षक है : *मैं आसन्न वर्त्तमान में जीता हूँ,विगत को समकालीन सम्वेदनशीलता से सजाता हूँ।*[41] वे अपने लेखों और साक्षात्कारों में भी इसे लगातार दुहराते रहे हैं कि अतीत का वर्तमान से

[40] **Views on cinema,Ibid,p.142**

[41] **Always Being Born,Ibid,p.79**

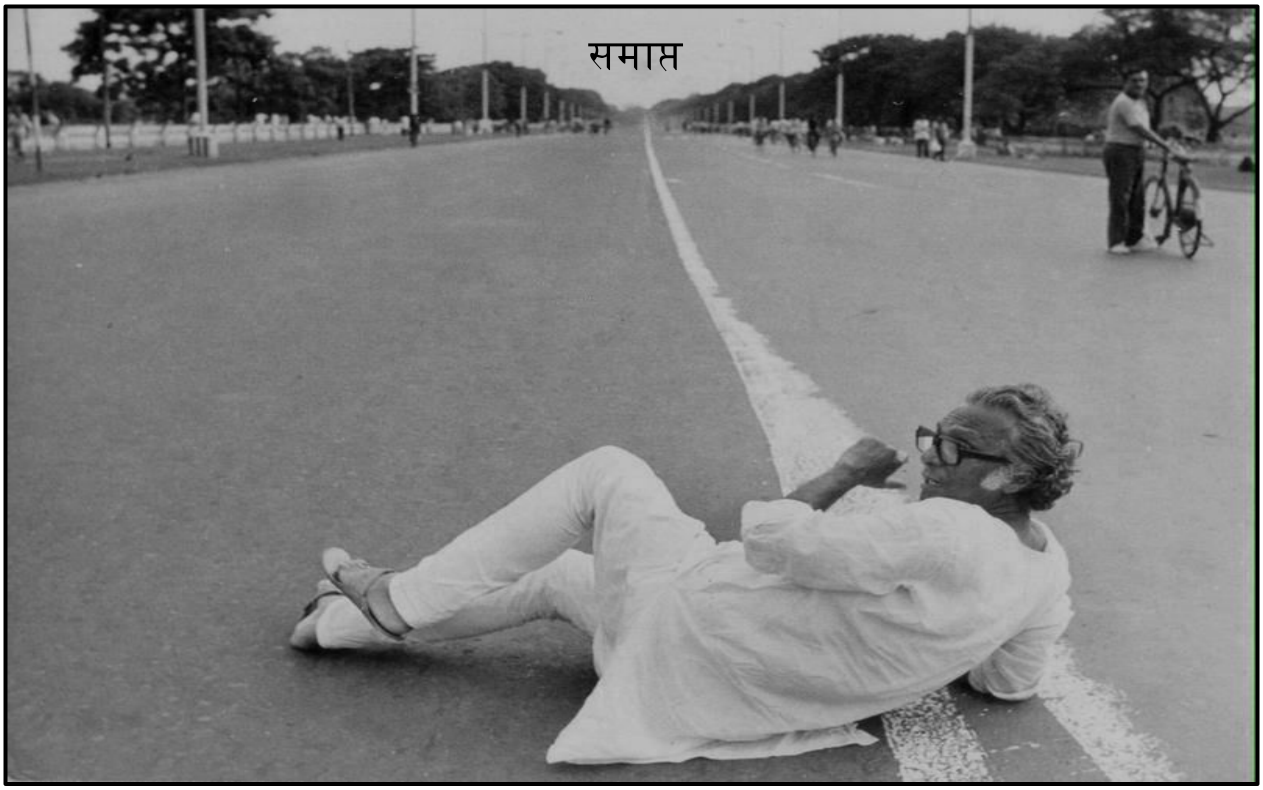
निरंतर संवाद ही अतीत को वर्तमान से जोड़ देता है और हमें निरंतर इतिहास का पुनर्निरूपण करते रहना चाहिए।[42]लेकिन इतिहास और इतिहास का निरूपण एक जटिल और विवादास्पद मुद्दा है। दृष्टि का कोण एक प्रकार से दृश्य को ही बदल देता है । मृणाल सेन की फिल्मों में अतीत और निकट अतीत का जो चित्रण हुआ है और जिस कोण से हुआ है उससे हमें फिल्मकार की इतिहास-दृष्टि का पता तो चलता है लेकिन अगर हमें उनके सैद्धांतिक आग्रहों को जानना हो तो हमें उनकी वृत्त- चित्र *मूविंग पर्सपेक्टिव* (१९६७) देखना होगा ।यह फिल्म सिन्धु घाटी सभ्यता से लेकर सन उन्नीस सौ सढसठ तक लगभग पांच हजार साल की यात्रा को दर्शाना चाहती है और वह भी एक घंटे की अवधि में ----जाहिर है इसे स्थूल तो होना ही था लेकिन यह फिल्म तो भारतीय सभ्यता की एक प्रामाणिक झलक दिखाने में भी सफल नहीं हो सकी । *आर्य बाहर से यहाँ आए* इसे स्वयंसिद्ध सत्य के रूप में रखना ,मध्य-काल को मुग़ल काल का पर्याय मानते हुए जल्दी से आगे बढ़ जाना और सबसे बढ़कर यह कि देश की राजनैतिक एकता को ही एकमात्र एकता मानना------ इस वृत्त-चित्र की इतिहास-दृष्टि की विशिष्टताएं हैं।मृणाल सेन इस फिल्म से खुश नहीं थे लेकिन इसका कारण वे सरकार की *अनेकता में एकता* की लोकप्रिय अवधारणा को मानते थे। उनके अनुसार गोरे विदेशी साम्राज्यवादी शासकों के खिलाफ सम्पूर्ण भारत के प्रतिरोध से ही एकता कायम हुई और यहीं फिल्म थोड़ी सुगठित हुई , नहीं तो प्राचीन और मध्यकालीन भारत के आरंभिक अंशों में कोई आकार नहीं थी।[43] जाहिर है जो व्यक्ति राजनैतिक एकता को ही एकमात्र एकता मानता हो,सांस्कृतिक एकता को तरजीह न देता हो उसके लिए यह संभव नहीं था कि नाटक, नृत्य,संगीत ,स्थापत्य,चित्रकला जैसे किसी भी कला-रूप या संस्कृति के किसी भी रूपाकार की विभिन्न शैलियों,परम्पराओं को चित्रित कर भारतीय जन-मानस के पांच हजार सालों में सामूहिक अवचेतन के बनने की एक झलक भर दिखा दे । वैसे यह संदिग्ध ही है कि भारतीय सभ्यता की आत्मा को *परम्परा* के बजाय *इतिहास* के सहारे कभी भी पकड़ा जा सकता है !

---

[42] **Views on cinema,Ibid,p.35**
[43]**Ibid,p.32**

ग्यारह

मृणाल सेन की अधिकाँश फ़िल्में समापनहीन हैं,जीवन की तरह अनिश्चित और निष्पत्तिहीन -----ऐसा भी हो सकता था तो वैसा भी हो सकता था[44] ....मृणाल सेन पूछते हैं कि फिर क्यों अपनी रचना में कोई निष्कर्ष दूं?[45] आश्चर्य नहीं कि उनकी प्राय: सभी फ़िल्में मुक्त-अंत (ओपन-एंडेड)वाली हैं। कवि की उक्ति है : *आरम्भ के पहले अंत है/और अंत और आरम्भ हमेशा से वहीं थे /आरम्भ के पहले और अंत के बाद।*[46]



[44] वह सितम्बर १९९० की शाम थी ,भुबनेश्वर रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर मृणाल सेन तेज-तेज चहलकदमी करते हुए दिखाई दिए---कुछ हडबडाहट में लगातार सिगरेट फूँकते हुए ।उनके साथ पूरा क्रू था जिनसे वे बार बार घड़ी की ओर संकेत कर कुछ पूछते –से जान पड़ते थे।मैं प्लेटफार्म की दूसरी ओर था --- भुवनेश्वर फिल्म समारोह में *एक दिन अचानक* अभी अभी देखी थी,प्रोफ़ेसर शशांक के घर छोड़ने का कोई स्पष्ट कारण फिल्म में नहीं बताया गया था ,मन में इच्छा हुई कि क्यों नहीं फिल्मकार से ही जान लें ।बगैर किसी पूर्व परिचय के जब मैंने झिझकते हुए उनसे पूछा तो उन्होंने रुक कर बड़े धैर्य से प्रतिप्रश्न करते हुए कहा कि आपने फिल्म देखी है न , बताइए, आपको क्या लगता है?मैंने कुछ संकोच के साथ जो बात कही,वह यह थी कि प्रोफ़ेसर को जिस पल यह एहसास होता है कि वह विशिष्ट नहीं,सामान्य है तो वह इसे बर्दाश्त नहीं कर पाता और घर छोड़ देता है ।फिर मैंने कुछ इसरार करते हुए कहा लेकिन मैं तो आपसे जानना चाहता हूँ ।उन्होंने शून्य में देखते हुए सिगरेट का एक गहरा कश लिया और कहा कि आपको ऐसा लगा फिर ऐसा ही है...

[45] **Montage,Ibid,p.126**

[46] ***"The end precedes the beginning/and the end and the beginning were always there/before the beginning and after the end."*** **T.S.Eliot, Collected Poems, Rupa & Co.calcutta,1992,p.194**

फिल्मानुक्रमणिका :कथा-चित्र (फीचर-फिल्म)

रात भोर(१९५९) : श्वेत श्याम,भाषा:बांग्ला, कथा:स्वराज बनर्जी,फोटोग्राफी:रामानंद सेनगुप्ता,संगीत:सलील चौधरी,सम्पादन:रमेश जोशी,निर्माता:एस.बी.प्रोडक्शन,पटकथा और निर्देशन:मृणाल सेन,भूमिका:छवि विश्वास,उत्तम कुमार,छाया देवी,सावित्री चटर्जी,शोभा सेन.मानिक चटर्जी

नील आकाशेर नीचे (१९५८): श्वेत श्याम,भाषा:बांग्ला,कथा:महादेवी वर्मा,फ़ोटोग्राफ़ी:शैलजा चटर्जी,संगीत:हेमंत मुखर्जी,सम्पादन:सुबोध राय,निर्माता:हेमंत-बेला प्रोडक्सन ,पटकथा और निर्देशन:मृणाल सेन,भूमिका:काली बनर्जी,मंजू दे,स्मृति विश्वास,विकास राय,अजित चटर्जी,सुरुचि सेनगुप्ता

बाईसे श्रावण (१९६०): श्वेत श्याम,भाषा:बांग्ला,कथा:कनाई वसु, फ़ोटोग्राफ़ी:शैलजा चटर्जी,संगीत:हेमंत मुखर्जी,सम्पादन:सुबोध राय,निर्माता:कल्लोल फिल्म्स,कला निर्देशन:बंसी चन्द्र गुप्त, पटकथा और निर्देशन:मृणाल सेन,भूमिका:माधवी मुखर्जी,ज्ञानेश मुखर्जी,उमानाथ भट्टाचार्य,अनूप कुमार

पुनश्च (१९६१): श्वेत श्याम,भाषा:बांग्ला,कथा:आशीष वर्मन, फ़ोटोग्राफ़ी:शैलजा चटर्जी,संगीत:समरेश राय,सम्पादन:गंगाधर नस्कर,निर्माता:मृणाल सेन प्रोडक्शन, पटकथा और निर्देशन:मृणाल सेन,भूमिका:सौमित्र चटर्जी,कनिका मजुमदार,एन.विश्वनाथन,शेफाली बनर्जी,कुनाल वासु,पहाडी सान्याल,काली बनर्जी

अवशेषे (१९६३): श्वेत श्याम,भाषा:बांग्ला,कथा:अचिन्त्य कुमार सेनगुप्ता, फ़ोटोग्राफ़ी:शैलजा चटर्जी,संगीत:राबिन चटर्जी, सम्पादन:गंगाधर नस्कर, निर्माता:स्कूप्स फिल्म्स,कला निर्देशन:बंसी चन्द्र गुप्त, पटकथा और निर्देशन:मृणाल सेन,भूमिका:सावित्री चटर्जी,असित बरन,उत्पल दत्त,रवि घोष,विकास राय,सुलता चौधरी,पहाडी सान्याल,छाया देव्व,अनूप कुमार,तरूण कुमार

प्रतिनिधि (१९६४): श्वेत श्याम,भाषा:बांग्ला,कथा:अचिन्त्य कुमार सेनगुप्ता, फ़ोटोग्राफ़ी:शैलजा चटर्जी,संगीत:हेमंत मुखर्जी, सम्पादन:गंगाधर नस्कर, निर्माता:एलोरा प्रोडक्शन्श ,कला निर्देशन:बंसी चन्द्र गुप्त, पटकथा और निर्देशन:मृणाल सेन,भूमिका:सावित्री चटर्जी,सौमित्र चटर्जी,अनूप कुमार,सत्य बनर्जी,प्रसेनजित सरकार,जाहर राय

आकाश कुसुम (१९६५): श्वेत श्याम,भाषा:बांग्ला,कथा: आशीष बर्मन, फ़ोटोग्राफ़ी:शैलजा चटर्जी,संगीत:सुधीन दासगुप्ता, सम्पादन:गंगाधर नस्कर, निर्माता: पूर्वाचल फिल्म प्रोड्यूसर्स ,कला निर्देशन:बंसी चन्द्र गुप्त, पटकथा: आशीष बर्मन और मृणाल सेन,निर्देशन:मृणाल सेन,भूमिका:अपर्णा सेन,सौमित्र चटर्जी,शुभेंदु चटर्जी,हरधन बनर्जी,सोभा सेन,सती देवी,प्रफुल्ल बाला देवी

माटिर मानिष (१९६६): श्वेत श्याम,भाषा:ओडिया,कथा: कालिंदी चरण पाणिग्रही, फ़ोटोग्राफ़ी:शैलजा चटर्जी,संगीत:भुवनेश्वर मिश्रा, सम्पादन:गंगाधर नस्कर,निर्माता:छायावाणी प्रतिष्ठान, पटकथा और निर्देशन:मृणाल सेन,भूमिका:प्रशांत नंदा,शरत पुजारी,दुखीराम साइन ,भानुमती,राम मानिया,भीम सिंह ,सुजाता

भुवन शोम (१९६९): श्वेत श्याम,भाषा:हिन्दी,कथा:वनफूल (बलाईचन्द मुखर्जी), फ़ोटोग्राफ़ी:के.के.महाजन,संगीत:विजय राघव राव, सम्पादन:गंगाधर नस्कर, निर्माता:मृणाल सेन प्रोडकशन, पटकथा और निर्देशन:मृणाल सेन,भूमिका:उत्पल दत्त,सुहासिनी मुले,शेखर चटर्जी,साधु मेहर,रोचक पंडित,पुण्यदास

इच्छापूरण(१९७०):श्वेत-श्याम,भाषा:बांग्ला,कथा:रविन्द्रनाथ ठाकुर, फ़ोटोग्राफ़ी: के. के. महाजन,संगीत:आलोक नाथ दे , सम्पादन:गंगाधर नस्कर, निर्माता:मृणाल सेन प्रोडकशन, पटकथा और निर्देशन:मृणाल सेन,भूमिका:शेखर चटर्जी,सुरजीत नंदी,शोभा सेन,नेमाई घोष,साधु मेहर,केया चक्रवर्ती,मनिका राय चौधरी

इंटरव्यू(१९७०):श्वेत-श्याम,भाषा:बांग्ला,कथा:आशीष बर्मन फ़ोटोग्राफ़ी: के. के. महाजन,संगीत:विजय राघव राव, सम्पादन:गंगाधर नस्कर, निर्माता: मृणाल सेन प्रोडकशन, कला निर्देशन:बी.कल्याण,पटकथा और निर्देशन:मृणाल सेन,भूमिका:रंजित मल्लिक करूणा बनर्जी,शेखर चटर्जी,ममता चटर्जी,बुलबुल मुखर्जी,उमानाथ भट्टाचार्य,अमल चक्रवर्ती,तपन दासगुप्ता,बिमल बनर्जी,गिरीन्द्रनाथ दास,सत्येन घोष,क्षुधिराम भट्टाचार्य,सुजीत बासु,आलमो मारिस,रवि चक्रवर्ती,एम्.सुब्रह्मनियम,अशोक चावला,पेत्रेशिया देनेट

एक अधूरी कहानी (१९७१) :श्वेत-श्याम,भाषा:हिन्दी,कथा:सुबोध घोष, फ़ोटोग्राफ़ी: के. के. महाजन,संगीत:विजय राघव राव, सम्पादन:गंगाधर नस्कर,निर्माता:अरूण कौल प्रोडक्शन , पटकथा और निर्देशन:मृणाल सेन,भूमिका:विवेक चटर्जी,आरती भट्टाचार्या,उत्पल दत्त,शेखर चटर्जी,श्याम लाहा,शोभा सेन,साधना राय चौधरी,अजितेश बनर्जी,ज्ञानेश मुखर्जी

कलकत्ता ७१ (१९७२): श्वेत-श्याम,भाषा:बांग्ला,कथा:मानिक बंदोपाध्याय,प्रबोध सान्याल,समरेश बासु,अजितेश बंदोपाध्याय, फ़ोटोग्राफ़ी: के. के. महाजन,संगीत:आनंद शंकर, सम्पादन:गंगाधर नस्कर, कला निर्देशन:बंसी चन्द्र गुप्त, निर्माता:डी.एस.पिक्चर्स, पटकथा और निर्देशन:मृणाल सेन,भूमिका:रंजित मल्लिक,सुहासिनी मुले,उत्पल दत्त,देवराज राय,सत्या बनर्जी,साधना राय चौधरी,माधबी चक्रवर्ती,सुचेता राय,बिनाता राय,अशोक मुखर्जी,देवातोश घोष,गीता सेन,सुरजीत नंदी,अजितेश बनर्जी,अजय बनर्जी,मानिक राय चौधरी

पदातिक (१९७३): श्वेत-श्याम,भाषा:बांग्ला,कथा:आशीष बर्मन एवं मृणाल सेन, फ़ोटोग्राफ़ी: के. के. महाजन,संगीत:आनंद शंकर, सम्पादन:गंगाधर नस्कर, निर्माता: मृणाल सेन प्रोडकशन, पटकथा:मृणाल सेन एवं आशीष वर्मन,निर्देशन:मृणाल सेन, भूमिका: धृतमान चटर्जी,सिमी ग्रेवाल,विजन भट्टाचार्या,जोछ्न दस्तेदार,प्रभाष सरकार,ध्रुव मित्रा,असीमा सिन्हा,कमल किदवई, फरीदा किदवई, तपन दास

कोरस (१९७४): श्वेत-श्याम,भाषा:बांग्ला,कथा:मोहित चटर्जी,गुलाम कुद्दुस और मृणाल सेन, फ़ोटोग्राफ़ी: के. के. महाजन,संगीत:आनंद शंकर, सम्पादन:गंगाधर नस्कर, निर्माता: मृणाल सेन प्रोडकशन, पटकथा:मृणाल सेन एवंमोहित चटर्जी,निर्देशन:मृणाल सेन, भूमिका:उत्पल दत्त,शेखर चटर्जी,हरधन बनर्जी,अभिजीत मुखर्जी,अजय बनर्जी,दिलीप राय,निर्मल घोष,सत्य बनर्जी,गीता सेन,सुरजीत नंदी,रवि घोष

मृगया(१९७६):रंगीन,भाषा:हिन्दी,कथा:भगवती चरण पाणिग्रही, फ़ोटोग्राफ़ी: के. के. महाजन, संगीत: सलिल चौधरी, सम्पादन: गंगाधर नस्कर, निर्माता: उदय भास्कर इंटर्नेशनल, पटकथा:मृणाल सेन एवं मोहित चटर्जी, निर्देशन:मृणाल सेन, भूमिका: मिथुन चक्रवर्ती,ममता शंकर,ज्ञानेश मुखर्जी,अजय बनर्जी,सजल राय चौधरी,रेबा राय चौधरी,गीता करमाकर,समेत भांजा,साधू मेहर ,असित बनर्जी,अनूप कुमार

ओका उरी कथा (१९७७): रंगीन,भाषा:तेलगु,कथा:प्रेमचंद, फ़ोटोग्राफ़ी: के. के. महाजन, संगीत:विजय राघव राव, सम्पादन:गंगाधर नस्कर,निर्माता:ए.परान्धमा रेड्डी, पटकथा:मृणाल सेन एवं मोहित चटर्जी, निर्देशन:मृणाल सेन, भूमिका:बासुदेव राव,ममता शंकर,नारायण राव,ए.आर.कृष्णा,लक्ष्मी देवदास

परशुराम(१९७८):रंगीन,भाषा:बंगला, कथा:मृणाल सेन एवं मोहित चटर्जी, फ़ोटोग्राफ़ी:रणजीत राय,संगीत:ब.व.कारंत, सम्पादन:गंगाधर नस्कर,निर्माता:बंगाल सरकार,पटकथा: मृणाल सेन एवं मोहित चटर्जी, निर्देशन:मृणाल सेन, भूमिका:अजित गुहा,अरूण मुखर्जी,सुमति गुहा ठाकुरता,नीलकांत सेनगुप्ता,विभाष चक्रवर्ती,,रेबा राय

चौधरी,नेमाई घोष,राधारानी देवी,सजल रायचौधरी,आरती दास,अनुराधा देव,अभिजीत घोष,जयंत भट्टाचार्य,श्रीला मजुमदार,शैलेन गंगोपाध्याय

एक दिन प्रतिदिन (१९७९): रंगीन,भाषा:बंगला, कथा:अमलेंदु चक्रवर्ती, फ़ोटोग्राफ़ी: के. के. महाजन, संगीत:ब.व.कारंत, सम्पादन:गंगाधर नस्कर,कला निद्र्शक:सुरेश चन्द्र, निर्माता: मृणाल सेन प्रोडकशन,पटकथा और निर्देशन:मृणाल सेन,भूमिका:सत्य बनर्जी,गीता सेन,ममता शंकर,श्रीला मजुमदार,तपन दास,टुपुर घोष,कौशिक सेन,नलिनी बनर्जी,अरूण मुखर्जी,उमानाथ भट्टाचार्य,विपल्व चटर्जी,गौतम चक्रवर्ती

अकालेर संधाने (१९८०): रंगीन,भाषा:बंगला, कथा:अमलेंदु चक्रवर्ती, फ़ोटोग्राफ़ी: के. के. महाजन, संगीत:सलिल चौधरी, सम्पादन:गंगाधर नस्कर,कला निद्र्शक:सुरेश चन्द्र, निर्माता:डी.के.फिल्मस, पटकथा और निर्देशन:मृणाल सेन,भूमिका:धृतमान चटर्जी,स्मिता पाटिल,दीपांकर दे,राजन तरफदार,जोछान दस्तीदार,विप्लव चटर्जी,समरेश बनर्जी,परेश घोष,नीलकांत सेनगुप्ता,देविका मुखर्जी,श्रीला मजुमदार,जयंत चौधरी,गीता सेन,राधामोहन भट्टाचार्या,प्रमोद गांगुली

चलचित्र (१९८१): रंगीन,भाषा:बंगला, कथा:मृणाल सेन, फ़ोटोग्राफ़ी: के. के. महाजन, संगीत:आलोक नाथ दे, सम्पादन:गंगाधर नस्कर,कला निद्र्शक:सुरेश चन्द्र, निर्माता:डी.के.फिल्मस, पटकथा और निर्देशन:मृणाल सेन,भूमिका:अंजन दत्त,गीता सेन,उत्पल दत्त,परेश घोष,पूर्णिमा दत्त,राधारानी देवी,कल्पना मुखर्जी,रेखा चटर्जी,आरती चक्रवर्ती,ककाली बोस,रूपा बर्मन,मीठू मुखर्जी,रामेन राय चौधरी,दिलीप बोस,देवप्रतिम दासगुप्ता,रीधिप्रतिम दासगुप्ता,कौशिक सेन,शेखर दास, सुजीत घोष

खारिज (१९८२): रंगीन,भाषा:बंगला, कथा:रामपद चौधरी, फ़ोटोग्राफ़ी: के. के. महाजन, संगीत:ब.व.कारंत, सम्पादन:गंगाधर नस्कर,कला निर्देशक:नितीश राय, निर्माता:नीलकांत फिल्म्स, पटकथा और निर्देशन:मृणाल सेन,भूमिका:अंजन दत्त,ममता शंकर,श्रीला मजुमदार,देवतोष घोष,नीलोत्पल दे,बिमल चटर्जी,इन्द्रानी मैत्रा,देवाप्रतिम दासगुप्ता

खंडहर (१९८३):रंगीन, भाषा:हिन्दी,कथा:प्रमेन्द्र मित्र, फ़ोटोग्राफ़ी: के. के. महाजन, संगीत:भास्कर चंदावरकर,सम्पादन:मृण्मय चक्रवर्ती,कला निर्देशन:नीतीश राय,निर्माता:श्री भारत लक्ष्मी पिक्चर्स, पटकथा और निर्देशन:मृणाल सेन,भूमिका:शबाना आजमी,नसीरूद्दीन शाह,गीता सेन,पंकज कपूर,अन्नू कपूर,राजन तैरेफ्दार,श्रीला मजुमदार

जेनेसिस (१९८६): रंगीन, भाषा:हिन्दी,कथा:समरेश वासु, फ़ोटोग्राफ़ी: कार्लो वारिनी,संगीत:रवि शंकर,सम्पादन:एलिजाबेथ वेल्चली, निर्माता: स्कार्बी फिल्म्स(फ्रांस),मृणाल सेन-पी.एल.आर.टी. प्रोडक्सन्स,लेस फिल्म्स दे ला ड्रेवे(बेल्जियम),और केक्टस फिल्म्स(स्विट्जरलैंड), पटकथा और निर्देशन:मृणाल सेन,भूमिका:शबाना आजमी,नसीरूद्दीन शाह,ओम पुरी,एम.के.रैना,

एक दिन अचानक (१९८९): रंगीन, भाषा:हिन्दी,कथा:रामपद चौधरी, फ़ोटोग्राफ़ी: के. के. महाजन, संगीत:ज्योतिष्का दास गुप्ता,सम्पादन:मृण्मय चक्रवर्ती,कला निर्देशन:गौतम बासु,निर्माता:राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम, पटकथा और निर्देशन:मृणाल सेन,भूमिका:श्रीराम लागू,शबाना आजमी,उत्तरा बावकर,अपर्णा सेन,रूपा गांगुली,अंजन चक्रवर्ती

महापृथ्वी(१९९१): रंगीन,भाषा:बंगला, कथा:अंजन दत्ता,फोटोग्राफी: शशि आनंद,संगीत:ब.व. कारंत और चन्दन राय चौधरी,सम्पादन:मृण्मय चक्रवर्ती,कला निर्देशन:गौतम वासु, निर्माता:गौतम गोस्वामी,पटकथा और निर्देशन:मृणाल सेन,भूमिका:विक्टर बनर्जी,सौमित्र चटर्जी,अपर्णा सेन,गीता सेन,अंजन दत्त,अनसूया मजुमदार,अभिजीत मुखर्जी,नीलोत्पल दे,असित बनर्जी,कुमारजीत चटर्जी,सौमेन बोस,संतोष हालदार,मुकुल चौधरी,उत्पल चक्रवर्ती

अंतरीन (१९९३): रंगीन,भाषा:बंगला, कथा:मंटो, फोटोग्राफी: शशि आनंद,संगीत: शशि आनंद ,सम्पादन:मृण्मय चक्रवर्ती,कला निर्देशन:गौतम वासु, निर्माता: राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम ,पटकथा और निर्देशन:मृणाल सेन,भूमिका:डिम्पल कपाडिया,अंजन दत्त,तथागत सान्याल

आमार भुवन(२००२) :रंगीन,भाषा:बंगला, कथा:अफसर अहमद,फोटोग्राफी:अविक मुखोपाध्याय,संगीत:देवज्योति मिश्रा,सम्पादन:मृण्मय चक्रवर्ती,कला निर्देशन:गौतम वासु,निर्माता:पी.डी.गुप्ता, पटकथा और निर्देशन:मृणाल सेन,भूमिका:नंदिता दास,कौशिक सेन,शाश्वत चटर्जी,सृजता भट्टाचार्या,विभास चक्रवर्ती,अरूण मुखर्जी,सायन कुंडू,शुभान्विता गुहा

फिल्मानुक्रमणिका :दूरदर्शन -चित्र (टेली- फिल्म)

तस्वीर अपनी अपनी (१९८४) रंगीन,हिन्दी ,कलकत्ता दूरदर्शन

कभी दूर कभी पास (१९८५-८६):(तेरह टेली-फ़िल्में): रंगीन, भाषा:हिन्दी, फोटोग्राफी:संवित बोस,शशि आनंद,संगीत:चन्दन राय चौधरी,सम्पादन:मृण्मय चक्रवर्ती,कला निर्देशन:गौतम वासु,निर्माता,पटकथा और निर्देशन:मृणाल सेन

दस साल बाद :कथा: अचिन्त्य कुमार सेनगुप्ता,भूमिका:अपर्णा सेन,गिरीश कर्नाड

रविवार:कथा: अचिन्त्य कुमार सेनगुप्ता,भूमिका:ममता शंकर,धृतमान चटर्जी

सालगिरह: कथा: अचिन्त्य कुमार सेनगुप्ता,भूमिका:दीप्ती नवल, धृतमान चटर्जी

दो बहन :कथा:नरेन्द्रनाथ मित्रा भूमिका:अनिता कंवर,नीना गुप्ता

आइना :कथा:दीपेंद्रनाथ बंदोपाध्याय,भूमिका:नीना गुप्ता,पंकज कपूर

जीत (भाग एक):कथा:मोटी नंदी,भूमिका:दीपांकर दे,सुरेखा सिकरी

जीत (भाग दो):कथा:मोटी नंदी,भूमिका:दीपांकर दे,सुरेखा सिकरी

आजकल:कथा:रामपद चौधरी,भूमिका:मनोहर सिंह,लिली चक्रवर्ती

अपराजित:कथा:मृणाल सेन,भूमिका:मनोहर सिंह,उत्तरा बावकर

अजनबी:कथा:दिव्येंदु पालित,भूमिका: नीना गुप्ता,दिलीप धवन

शॉल :कथा: दिव्येंदु पालित,भूमिका: प्रिया तेंदुलकर ,दिलीप धवन

स्वयम्वर: कथा:मृणाल सेन,भूमिका:सुहेल सेठ,निखील भगत,अपराजिता

कभी दूर कभी पास :कथा:रामपद चौधरी,भूमिका:अनिल चटर्जी

फिल्मानुक्रमणिका :वृत्त-चित्र (डाक्युमेंटरी फिल्म)

मूविंग पर्सपेक्टिव(१९६७): रंगीन,भाषा:अंग्रेजी,निर्माता: फिल्म्स डिवीजन ,भारत सरकार

त्रिपुरा प्रसंग(१९८२) रंगीन,भाषा:बंगाली,निर्माता:त्रिपुरा सरकार

कलकत्ता ,माय अल डोराडो (१९८६): (*सिटी लाइफ* के अंतर्गत विश्व की बारह शहरों पर आधारित चित्र के लिए कलकत्ता शहर पर वृत्त चित्र)रंगीन,भाषा:अंग्रेजी,निर्माता:रिनके एंड वान ल्यूवार्दे आफ रोतेरदम फिल्म्स

एंड शो गोज ओन(१९९५) : (सिनेमा के सौ साल पूरे होने पर ब्रिटिश फिल्म इंस्टिट्यूट के द्वारा अट्ठारह भाग में बनाए गए धारावाहिक का इंडिया चैप्टर) रंगीन,भाषा:अंग्रेजी,निर्माता:ब्रिटिश फिल्म इंस्टिट्यूट और राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम

अन्य निर्देशकों की फिल्मों में पटकथा लेखन:
अजय कर निर्देशित **कांच काटा हीरे** (१९६५)

अजीत लाहिरी निर्देशित **जोरा दीघिर चौधरी परिवार**(१९६६)

---------------**-------------**